
चन्दामामा



तब ब्रह्मदत्त काशी का राजा था। बोधिसत्व उसके खजाञ्ची के रूप में पैदा हुए। वे अस्सी करोड़ के मालिक थे, पर उन्हें संसार से वैराग्य हो गया। उन्होंने राजा को अपनी सम्पत्ति देनी चाही।

"मेरे पास पैसे की कोई कमी नहीं है। इसलिए तुम अपने धन का किसी और तरह सदुपयोग करो।" राजा ने जवाब दिया। तब खजाञ्ची ने राजा की अनुमति पर काशी में अन्न दान करने के लिए छः सरायें बनवाने की व्यवस्था की। नगर के चारों फाटकों पर चार सरायें, एक नगर के बीच में, और छठी खजाञ्ची के मकान के सामने बनवाई गयीं। इन सरायों में खूब दान धर्म किया जाता। हर रोज़ एक एक सराय पर लाख रुपये खर्च होते।

इन सरायों की व्यवस्था करने के कारण, खजाञ्ची ने मृत्यु के उपरान्त-स्वर्ग में इन्द्र का पद पाया। उनका पुत्र भी उनके पदचिह्नों पर चलता रहा और अपने पुण्यों के कारण चन्द्र के रूप में पैदा हुआ। चन्द्र का लड़का सूर्य के रूप में पैदा हुआ। सूर्य का लड़का मातलि हुआ, और मातलि का लड़का पञ्चशिख हुआ। वे सब देवता हो गये।

परन्तु पञ्चशिरव तक आते आते वंश परम्परा निर्मूल-सी हो गई । क्योंकि पञ्चशिख का लड़का, यद्यपि अस्सी करोड़ का मालिक था, पर बड़ा लालची था। पिता के मरते ही उसने सरायें बन्द करवा दीं। उसने सराय की इमारतें भी



तहस नहस करवा दीं। उसका यह विचार था कि उसके पूर्वज मूर्ख थे।

सरायों के बन्द होते ही, नगर के भूखे नङ्गे लोग पञ्चशिव के पुत्र के मकान के सामने रोने-चिल्लाने लगे- "महाराज दान मत बन्द कीजिये।" परन्तु उसने अपने आदमियों से, उन याचकों को वहाँ से जबर्दस्ती हटवा दिया। फिर भिखारियों ने उसके घर की ओर आने का नाम न लिया।

वह करोड़पति था। और अपने पूर्वजों की तरह खजाञ्ची का काम भी कर रहा था। परन्तु उसने कभी भी अपने पैसे से कोई आनन्द न उठाया। कभी उसने पेट भर न खाया। न पत्नी, बच्चों को ही खाने दिया। नमक मिर्च के साथ रूखा सूखा खाता और खट्टा मट्ठा पीकर पेट भर लेता। मोटा कपड़ा पहनता, एक टूटी फूटी गाड़ी में दुबला बूढ़ा बैल जोतकर इधर उधर जाया करता। ताड़ के पत्तों की छतरी का इस्तेमाल करता।

एक दिन उस कञ्जूस ने, महल की ओर जाते जाते सोचा कि उपकोशाधिपति को भी साथ ले जाया जाय। यह उसके घर गया। ठीक उसी समय उपकोशाधिपति, उसकी पत्नी व बच्चे, पत्तों पर हलवा रखकर खा रहे थे। कोशाधिपति को देखते ही उपकोशाधिपति ने उसको भी खाने के लिए निमन्त्रित किया।

"अगर आज मैंने इसका आतिथ्य स्वीकार किया तो कल मुझे इसके सारे घर को दावत देनी होगी।" यह सोचकर उसने कहा-"मैं अभी अभी पेट भरके खाकर आया हूँ। आप खाइये।"

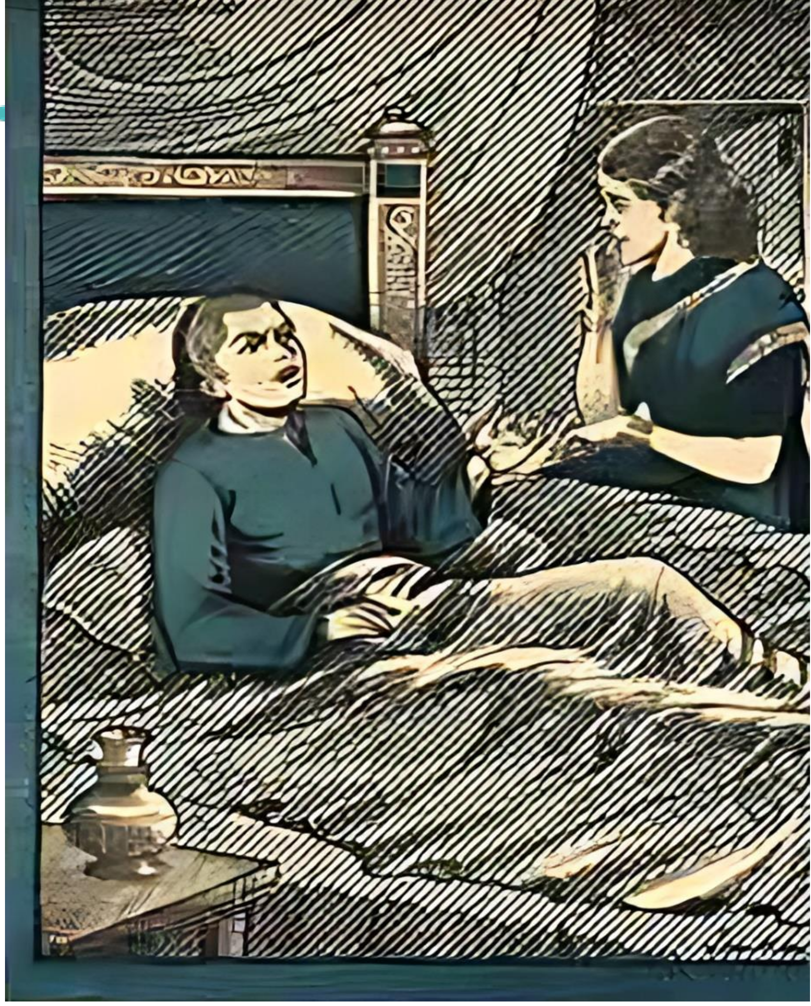
पर तब से उसको हलवा खाने की बड़ी इच्छा हुई। अगर घर में हलबा बनवाया गया तो उसके साथ और भी

बहुत से लोग खायेंगे। इसलिए उसने अपनी इच्छा के बारे में किसी से कुछ न कहा। मन ही मन ललचाता रहा। फिक्र करता रहा और इसी फिक्र में उसने चारपाई पकड़ ली।

उसकी पत्नी ने आकर कहा-"क्या आपकी तबीयत ठीक नहीं है?" "तबीयत तेरी शायद ठीक नहीं है, में बिल्कुल ठीक हूँ।" उसने कहा। पर उसकी पत्नी ने जैसे तैसे असली बात मालूम कर ली। सब सुनकर उसने कहा-"क्या हम कोई कङ्गाल हैं? हलवे के लिए इतनी फिक्र की क्या जरूरत थी? काशी के सब लोगों को मैं हलवा बनवाकर खिलाऊँगी।"

"मैं जानता हूँ, तुम्हारे मायकेवाले बहुत धनी हैं। वहाँ से लाकर शहर भर को दान दो।" कञ्जूस खजाञ्ची ने कहा।

पत्नी ने कहा-"कम से कम अपनी गलीवालों को तो बुलाओ?" "तेरा उनसे क्या मतलब?" कहा पति ने। "खैर घरवालों के लिए ही तैयार करवाऊँगी।" पत्नी ने कहा। पति इसके लिए भी न माना। "अच्छा, तो आपके लिए और मेरे लिये तैयार करूँगी।" पत्नी ने कहा।



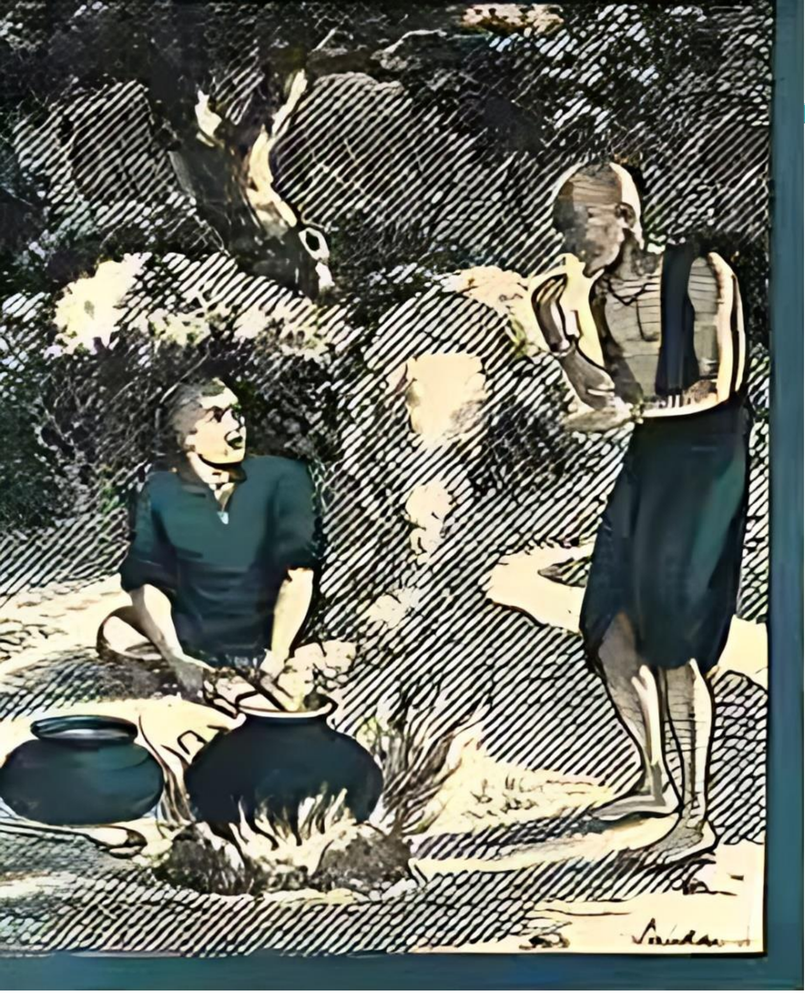
"तू क्यों आती है बीच में?" पति ने पूछा।

"अच्छा, तो केवल आपके लिए ही बनाऊँगी, अब तो ठीक है?" पत्नी ने पूछा।

"घर में बनाने की ज़रूरत ही नहीं है।"

"थोड़ी सूजी, दूध, घी, शहद आदि मुझे दो। दो चार बर्तन भी। मैं जङ्गल में जाकर, बढ़िया हलवा बनाकर वहाँ खाऊँगा।" पति ने कहा।

पत्नी ने सब जरूरी चीजें दे दीं। एक गुलाम के सिर पर वह सब उठाकर,



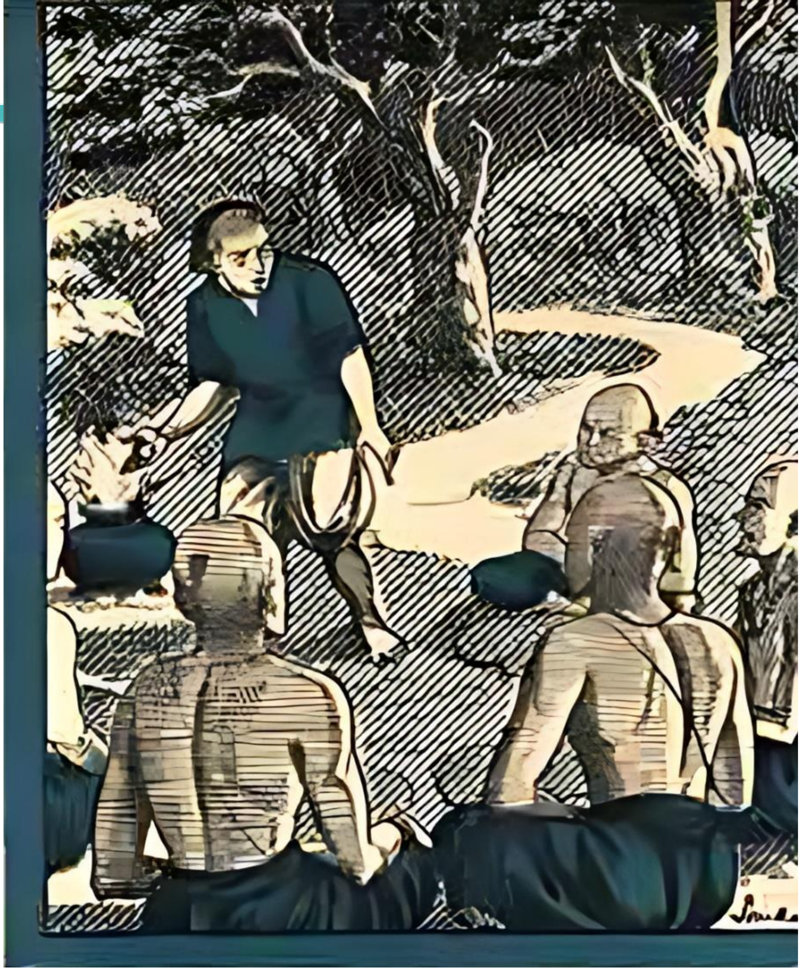
मुँह छुपाकर, कञ्जूस नदी के किनारेवाले जङ्गल में गया। नदी के किनारे, एक पेड़ के नीचे उसने एक भट्टी बनवाई। गुलाम से ईन्धन इकट्ठा करवाया, पानी मँगवाया। और फिर उसे रास्ते पर जाकर खड़े होने के लिए कहा। "अरे, कोई रास्ते पर आ जा रहा हो तो मुझे आकर बताना। जा, अगर मुझे तुमसे कुछ काम हुआ तो मैं बुलाऊँगा। जब तक न बुलाऊँ तब तक न आना।"

इस बीच, इन्द्र ने अपनी छठी पुश्त के कञ्जूस के बारे में जाना। "पञ्चशिख तक, सब दान-धर्म करके देवता बने, और पञ्चशिख का लड़का ऐसा कञ्जूस निकला कि उसने वंश की मान-मर्यादा मिट्टी में मिला दी और हलवा अकेला खाने के लिए जङ्गल में आकर भट्टी चढ़ा रहा है। अगर इसमें ज्ञानोदय न किया तो यह नरक जायेगा।" यह सोचकर, इन्द्र ने चन्द्र, सूर्य, मातलि, पञ्चशिख को बुलाकर उनसे सलाह मशवरा किया और उन्हें यह भी बताया कि वह क्या करने जा रहा था।

इन्द्र ने ब्राह्मण का वेश धारण किया और उस जगह गया, जहाँ कोशाधिपति हलवा बना रहा था। उससे पूछा-"काशी का कौन-सा रास्ता है?"

"क्या तेरी अक्ल मारी गई है? काशी का रास्ता नहीं जानते? इस तरफ़ काहे को आ रहे हो? जा दूर।" कोशाधिपति चिल्लाया। "क्यों चिल्लाते हो? हलवा बना रहे हो? शायद ब्राह्मणों को भोज दोगे। मैं भी उनके साथ खाने आऊँगा।" इन्द्र ने कहा।

"भोज-वोज कुछ नहीं है, जा वे जा।" खजाञ्ची ने उसे फटकारा।



"क्यों भाई, क्यों इतना गुस्सा करते हो? अतिथि को कुछ देने से पुण्य ही होता है, पाप नहीं।" इन्द्र ने कहा।

"मैं तुझे मुट्ठी भर भी कुछ न दूँगा। यह मेरे लिए ही काफी नहीं है। मैं खुद भीख माँगकर आया हूँ, और मैं अपनी भीख में से तुझे भी दूँ! वाह वाह। यह नहीं हो सकता।" खजाञ्ची ने कहा।

"थोड़ा है तो थोड़ा ही दान दो। अधिक है तो अधिक दो। अकेले कभी मत खाओ। दान करने से पुण्य होता है।" इन्द्र ने समझाया। आखिर खजाञ्ची ने कहा-"अच्छा, तो बैठ। तुझे थोड़ा हलवा दूँगा।"

इतने में चन्द्र ने भी ब्राह्मण वेश धारण करके हलवा माँगा। खजाञ्ची को उसे भी बैठने के लिए कहना पड़ा। फिर सूर्य, मातलि, पञ्चशिख ने भी ब्राह्मण वेश में आकर वहाँ धरना दिया।

जल्दी ही हलवा तैयार हो गया। "परोसूँगा, जाओ, पत्ते ले आओ।" खजाञ्ची ने कहा। ब्राह्मणों का हाथ पसारना था कि उनके हाथ में बड़े बड़े पहिये के बराबर कमल के पत्ते आ गये।

इतने बड़े बड़े पत्तों पर में नहीं परोसूँगा। छोटे छोटे मन्दार के पत्ते से ले आओ।" खजाञ्ची ने कहा। वे मन्दार के पत्ते ले आये। पर वे पत्ते भी केले के पत्ते से बड़े थे। उस पर खजाञ्ची ने हलबा परोसा। उन सबको परोसने के बाद भी, बर्तन में बहुत-सा हलवा बाकी रह गया।

इतने में पञ्चशिख ने कुत्ते का रूप घरकर उस बर्तन में मुख देना चाहा। ठीक समय पर खजाञ्ची ने उसे अपने हाथ से रोका, परन्तु कुत्ते ने उसके हाथ को जूठा कर दिया।

"हाथ धोने के लिए ज़रा मुझे थोड़ा पानी लाकर दो।" उसने ब्राह्मणों से कहा। उन्होंने साफ कह दिया-"हम नहीं लाकर देंगे।"

"मेरा हलवा खाया और इतना भी मला न करोगे।" खजाञ्ची ने कहा। तब भी वे न माने। "अच्छा, तो ज़रा मेरा बर्तन देखते रहो, मैं जाकर पानी ले आता हूँ।" कहता हुआ खजाञ्ची नदी की ओर गया। तुरन्त कुत्ते ने बर्तन में मुख दे दिया।

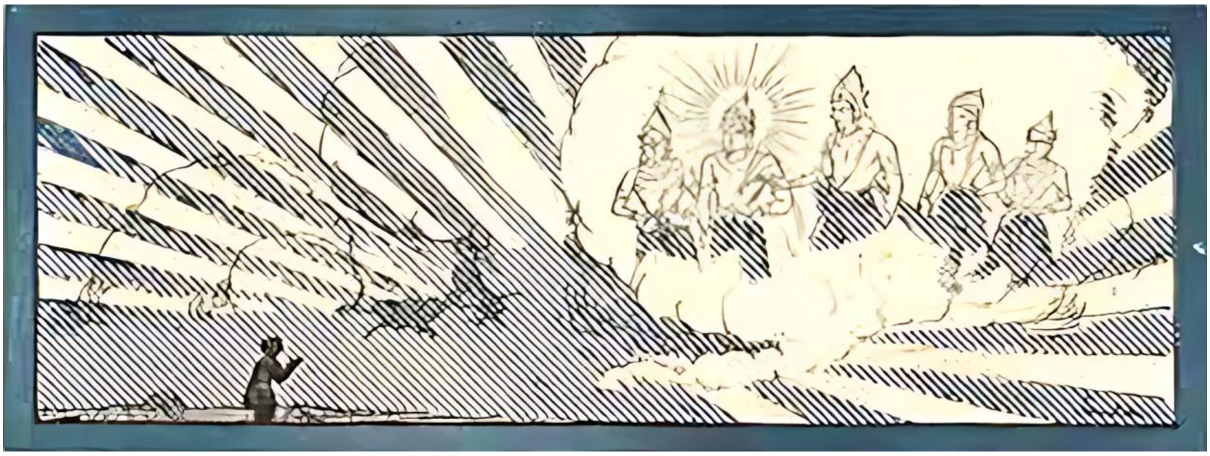
खजाञ्ची गरमा गया। ओर एक डण्डा लेकर कुत्ते के पीछे भागा, परन्तु झट कुत्ता, घोड़ा बन गया और खजाञ्ची को ही भगाने लगा। वह लगातार रूप बदलता जा रहा था। कभी छोटा, कभी बड़ा । खजाञ्ची ने ब्राह्मणों से कहा- "मुझे इस घोड़े से बचाइये।"

तुरन्त उन्होंने अपना असली रूप दिखाया और वे हवा में उठ खड़े हुए।

"आप मनुष्य नहीं हैं। देवता हैं। आपके नाम क्या हैं, क्यों आये हैं? कृपया बताइये।" खजाञ्ची ने पूछा।

"हम तुम्हारे पितर हैं। हमने मानव जन्म लिया, परन्तु दान-धर्म के प्रभाव से हम देवता हो गये। तुम लालची होकर, वंश की परम्परा का ख्याल न करने के कारण, नरक जाओगे। तुम्हें यह सबक सिलाने के लिए ही हम यहाँ आये हैं। तुम घर जाकर हमारी तरह दान धर्म करो, और देवता बनो।"

खजाञ्ची को अक्ल आई। उसने घर जाकर अपना सर्वस्व दान कर दिया। और वह हिमालय में तपस्या करने के लिए चला गया।





[१०]

[भल्लूककेतु ने उन राक्षसों का सरदार होना स्वीकार न किया। पद्मपाद अपने देश वापस पहुँचा। पिङ्गल उसके घर एक सप्ताह अतिथि रहा। फिर वह भी अपने घर गया। घर के सामने उसको अपनी माँ, रो-रोकर भीख माँगती दिखाई दी।]

पिङ्गल की आवाज़ सुनते ही माँ ने उसको पहचान कर आसू बहाते कहा-"बेटा, कितने दिनों बाद तुझे देख पायी हूँ। कहो कैसे हो? ठीक हो न?" उसे उसने गले लगा लिया। पिङ्गल ने उसे आश्वासन देते हुए कहा-"माँ, तेरी यह हालत क्यों हुई? में जाने से पहले तुझे हज़ार मुहरें दे गया था वे मुहरें क्या हुई? और भाई कहाँ गये हैं?"

माँ तुरत जवाब न दे सकी। कुछ सकपकाई। उसने आँसू पोंछते हुए कहा-"तुम्हारे भाइयों के कारण ही मेरी यह हालत हुई है। तेरे जाते ही उन दोनों ने मुझे मार पीटकर मुहरें ले लीं। फिर वे अपने रास्ते चले गये।"

माँ की बात सुनकर पिङ्गल स्तब्ध रह गया। पर माँ को सतानेवाले अपने क्रूर भाइयों के बारे में सोचकर उसे बड़ा दुख



[१०]

[भल्लूककेतु ने उन राक्षसों का सरदार होना स्वीकार न किया। पद्मपाद अपने देश वापस पहुँचा। पिङ्गल उसके घर एक सप्ताह अतिथि रहा। फिर वह भी अपने घर गया। घर के सामने उसको अपनी माँ, रो-रोकर भीख माँगती दिखाई दी।]

पिङ्गल की आवाज़ सुनते ही माँ ने उसको पहचान कर आसू बहाते कहा-"बेटा, कितने दिनों बाद तुझे देख पायी हूँ। कहो कैसे हो? ठीक हो न?" उसे उसने गले लगा लिया। पिङ्गल ने उसे आश्वासन देते हुए कहा-"माँ, तेरी यह हालत क्यों हुई? में जाने से पहले तुझे हज़ार मुहरें दे गया था वे मुहरें क्या हुई? और भाई कहाँ गये हैं?"

माँ तुरत जवाब न दे सकी। कुछ सकपकाई। उसने आँसू पोंछते हुए कहा-"तुम्हारे भाइयों के कारण ही मेरी यह हालत हुई है। तेरे जाते ही उन दोनों ने मुझे मार पीटकर मुहरें ले लीं। फिर वे अपने रास्ते चले गये।"

माँ की बात सुनकर पिङ्गल स्तब्ध रह गया। पर माँ को सतानेवाले अपने क्रूर माइयों के बारे में सोचकर उसे बड़ा दुख



हुआ। उसके लिए भी यह धर्म न था कि वह अपने आप अपने भाइयों की हत्या करे। पिङ्गल ने अपनी माँ को, जो सूखकर काँटा हो गयी थी, उठाकर घर की ओर ले जाते हुए कहा-"माँ, तुम्हें अब कष्ट न सहने पड़ेंगे। भगवान की कृपा से मैं सब परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुआ और कितना ही धन लेकर घर वापिस आया हूँ। आज से तेरे और मेरे कष्ट सब ख़तम हो गये हैं।" उसने अपना थैला खोला और उसमें रखे सोना, रत्न, मोती, हीरे, अपनी माँ को दिखाये।

माँ के आनन्द की सीमा न रही। उसने दोनों हाथों से मोती हीरों को उठाकर देखते हुए कहा-"बेटा, तुम किस्मतवाले हो। इसीलिए तुम इतनी मुसीबतें झेलकर, सही सलामत घर वापिस आगये हो। मुझे भूख लग रही है। पहले बाज़ार जाकर कुछ खाने-पीने के लिए लाओ।

माँ की बात सुनकर पिङ्गल जोर से हँसा। उसने दीवार के पास, उसे एक जगह बिठाया, उसके सामने पत्तल रखा; फिर अपनी जादू की थैली को उसे दिखाकर कहा-"माँ, जो तुम चाहती हो, माँगो । चावल, दाल ही नहीं, जो कोई पकवान तुम चाहो, चुटकी भर में तुम्हारे सामने ला दूँगा।

पिङ्गल, मैं तो भूख से मरी जा रही हूँ। मुझे पकवानों की क्या जरूरत है? पहले बाजार जाकर दो-चार रोटी ले आओ। उन्हीं से मैं अपना पेट भर लूँगी।" उसकी माँ ने कहा।

पिङ्गल, माँ के पास बैठ गया। थैले में हाथ डालकर उसने मन्त्र पढ़े। फिर उसमें से गरमागरम रोटियाँ बाहर निकालीं।

अभी माँ हैरान ही थी कि पिङ्गल ने थैले में से तरह तरह के पकवान, एक एक करके, एक सौ एक निकालकर माँ के पतल पर, चारों ओर परोसे।

माँ आश्चर्य चकित थी। उसने सामने के पकवानों को जी भर के देखकर कहा-"बेटा, यह जादू है? क्या है? मुझे कुछ नहीं मालूम हो रहा है। इतनी छोटी थैली मैं इतनी सारी चीजें कहाँ से आगई? और यह सब क्या है?"



पिङ्गल ने जादू के थैले को तह लगाकर पास रख लिया। वह एक एक पकवान का स्वाद चखता गया। "माँ वह सब फिर कभी बताऊँगा । पहले खाना तो ख़तम करो।"

थोड़ी देर में, पिङ्गल के साथ माँ ने भी पेट भरके खाया। पिङ्गल ने खाली तश्तरियों को थैले में रखकर माँ को देते हुए कहा-"माँ, आज से तुझे रसोई करने की ज़रूरत नहीं। इस थैले में एक अजीब शक्ति है। इसके प्रभाव से, हम जिस चीज़ को चाहते हुए इसमें हाथ रखते हैं, वह मिल जाती है। उस समय हमें यह मन्त्र पढ़ना होता है।" उसने माँ के कान में मन्त्र बताकर कहा-"यह रहस्य किसी को न बताना। मेरे भाइयों को भी न बताना।"

इतने में बाहर, किसी का सिर पीटकर रोना सुनाई दिया। पिङ्गल ने देखना चाहा कि क्या है, उसने दरवाज़ा खोला । सामने उसके दोनों भाई, जीवदत्त और लक्षदत्त, फटे, पुराने, मैले कुचले कपड़े पहने, सूखे बाल बिखेर कर जोर जोर से रो रहे थे।

अपने दोनों भाइयों को उस हालत में देखकर, पिङ्गल का उनके प्रति भ्रातृ-प्रेम उमड़ आया। उसने उनके पास जाकर

कहा-"भाइयो! रोओ मत। भगवान की कृपा से में बहुत-सा रुपया कमाकर वापस आया हूँ। हम अब आराम से रह सकते हैं।"

पिङ्गल के यह कहते ही, जीवदत्त और लक्षदत एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। तुरन्त जीवदत्त और जोर से रोने लगा सिर पीटकर उसने कहा-"अरे भाई पिङ्गल! मान लो आज से हमारी ज़िन्दगी ख़तम हो गयी। हमने माँ के साथ क्या अन्याय किया था, यह तो उसने तुझे बता ही दिया होगा। अब हम किस मुँह से इस घर में आ सकते हैं? हम इतने दिनों से तेरी राह ही देख रहे थे। तुझे एक बार देखकर उस तोते झील में मरने का निश्चय किया है। अब हम जीकर क्या करेंगे? तभी हमारे पापों का पश्चाताप हो सकेगा। माँ को शत शत नमस्कार! उससे कहना, वह हमारी गलतियाँ माफ करे। हम जाते हैं।" वह पीछे की ओर मुड़ा। उसके साथ लक्षदत्त भी चला।

पिङ्गल ने तुरन्त उछलकर उनका रास्ता रोका। "भाइयो, ठहरो। अब तुम कहाँ जा रहे हो?"



"कहाँ? हाहा हाहा!" जीवदत्त और लक्षदत्त पागलों की तरह हँसने लगे। "भाई रास्ते से हटो। हमें अपने पापों के लिए प्रायधित करना ही होगा। जो माँ पर अत्याचार करते हैं, उनको वह तोता झील ही शरण दे सकती है।" कहते हुए उन्होंने आगे बढ़ना चाहा।

इतने में माँ को भी, दरवाजे के पास अपने लड़को को देखकर बड़ी दया आई। यह उनका किया हुआ अन्याय भूल गयी। मातृ सुलभ प्रेम उसमें उमड़ आया। उसने पास आकर कहा-"बेटो, रोओ मत। भगवान की दया से, तुम्हारा छोटा भाई कितना ही धन कनाकर वापिस आया है। जो हो गया, सो हो गया। उसे भूल जाओ। कम से कम अब से तो आराम से जिन्दगी बसर करें।"

"तब हमारे पापों का कैसे प्रायश्चित किया जाये?" एक स्वर में जीवदत्त और लक्षदत्त ने पूछा।

"पश्चात्ताप सब पापों को हटा देता है। अब वापिस चले आओ।" पिङ्गल ने लक्षदत्त का हाथ पकड़कर कहा।





माँ ने भी अपने बड़े लड़कों का रास्ता रोककर कहा-"बेटो! अब अन्दर चलो। बचपन में, अगर अनजाने तुमने मेरा कुछ बिगाड़ा हो तो मैं तुम्हारी माँ हूँ, और वह भूल सकती हूँ।" कहते हुए उसने अपने दोनों लड़को के हाथ पकड़ लिये।

उसके बाद, कोसते कुढ़ते, जीवदत्त और लक्षदत घर में घुसे। माँ ने तुरन्त उनके नहाने के लिए पानी लाकर रखा और पिङ्गल के लाये हुए कीमती कपड़ों को उन्हें पहनने के लिए दिया। नहा-धोकर, रेशमी कपड़े पहनकर, उन दोनों ने माँ और पिङ्गल का आलिङ्गन किया।

"अगर खाने के लिए कुछ हो तो दो। बड़ी भूख लग रही है।"

पिङ्गल ने जादू की थैली ली। रसोई घर में जाकर, उसे माँ को देकर वह अपने माइयों के पास आकर बैठ गया। दो चार मिनट बाद माँ ने तरह तरह की खाने की चीजें तश्तरियों में लाकर बड़े लड़कों के सामने रखीं।

जीवदत्त और लक्षदत्त ने जल्दी जल्दी कुछ खाने के बाद पूछा-"इतनी चीजें काहे को बनाई हैं? हम कोई अतिथि थोड़े ही हैं? फाल्तू पैसा खराब।"

पिङ्गल ने हँसते हुए कहा-"हम रोज़ इसी तरह का भोजन कर सकते हैं। चाहें तो हम शहर के गरीबों को भी यहीं भोजन बाँट सकते हैं।"

पिङ्गल की बात सुनते सुनते जीवदत्त ने लक्षदत्त को इशारा किया। उसने भी यह दिखाने के लिए सिर हिलाया कि वह समझ गया है।

"उस दिन रात को भोजन के बाद, जीवदत्त और लक्षदत्त, गली में हवा खाने, टहलने निकले। वे दोनों जान गये थे कि

पिङ्गल अपने साथ बहुत सा धन लाया था। उस धन को कैसे लिया जाय? उनके सामने यह समस्या थी। जीवदत्त को यह भी लग रहा था, न सवेरे न शाम उसकी माँ ने रसोई की थी। उसने रसोई घर में जाकर सब कुछ देखा था। वह यह न जान सका कि बिना रसोई किये इतनी सारी चीजें कहाँ से आ गई थीं।

"पिङ्गल बहुत सा धन लाया था, इस बारे में सन्देह की कोई बात न थी। उसको पाने के लिए अभी कुछ समय लगेगा। हम पश्चात्ताप कर रहे हैं, यह माँ की तरह वह भी विश्वास कर रहा है। उस विश्वास को वैसा ही रहने दो। हमने दो बार तो दावत खा ही ली है। रसोई में भी चूल्हा नहीं जलाया गया। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है?" जीवदत्त ने पूछा।

लक्षदत्त ने आश्चर्य से सिर हिलाते हुए कहा-"अगर यह बात है तो जरूर पिङ्गल कोई मन्त्र सीख साख कर आया है। और यह सब उसी मन्त्र का प्रभाव है। इसलिए उसने इतने इतमीनान से कह दिया था कि वह शहर भर के गरीबों को वह भोजन



बँटवा सकता था। मौका पाकर माँ से यह भेद पूछना। वह बता देगी।"

दोनों भाइयों ने, अगले दिन, पिङ्गल को घर में न देख, माँ के पास जाकर यह बात पूछी। पहले तो उसने बताने से इनकार किया । परन्तु लड़कों के बहुत पूछने पर उसने उनको थैली लाकर दिखाई और उनसे कहा कि वे वह किसी को न बतायें।

".... क्यों.... वह मन्त्र क्या है? मुझे नहीं बताओगी। मैं इस समय जलेबी खाना चाहता हूँ।" जीवदत्त ने कहा।

माँ का तो बच्चों पर प्रेम होता ही है। जो मुसीबतें उन्होंने उस पर ढ़ाई थीं, वे भी भूल गई। उसने उनको मन्त्र बता दिया। उन्हीं के हाथ से उन्हीं की माँगी हुई चीज थैले में से निकलवाई। यह देख जीवदत्त और लक्षदत्त की खुशी का ठिकाना न रहा। उस दिन रात को उन दोनों ने पिङ्गल और माँ के विरुद्ध एक साजिश की। अगर पिङ्गल को घर से बाहर कर दिया तो वे जानते थे कि माँ तो कुछ कर नहीं पायेगी। पर पिङ्गल को कैसे हटाया जाय?

"कल जब में बाज़ार में था तो मुझे एक जहाज़ का कप्तान मिला था। उसे समुद्र में जहाजों को चलाने के लिए नवयुवकों की ज़रूरत है। कितना ही पैसा देकर वह घर के मुखियाओं से नवयुवकों को खरीद रहा है। हम उससे बातचीत करके, पिङ्गल को उसे बेच देंगे। हम ही तो इस घर के बड़े आदमी हैं।" जीवदत्त ने कहा।

"अच्छी चाल है। आओ, उस कप्तान से बातचीत कर आयें।" लक्षदत्त ने कहा। दोनों भाई मिलकर कप्तान के ठहरने की जगह गये। उसने उनकी आवभगत करके पूछा कि वे क्या चाहते थे। तब जीवदत्त ने रोनी-सी शक्ल बनाकर कहा-"कप्तान जी हमारा एक भाई है। उसका नाम पिङ्गल है। वह बड़ा आवारा गिर्द हैं। कभी घर में नहीं रहता। हमारी बूढ़ी माँ को और हमें सताकर रुपये ऐंठता रहता है। हम यह नहीं सोच पा रहे हैं कि उससे कैसे पिण्ड छुड़ाया जाये।"

(अभी और है)



आत्मा की चिकित्सा



विक्रमार्क तो हठी था ही। वह फिर एक बार पेड़ के पास गया। शव को उतार कर, कन्धे पर डाल कर, चुपचाप श्मशान की ओर चल पड़ा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा-"राजा, अगर तुम आधी रात में अपनी आत्मा को शान्त करने के लिए यह सब कर रहे हो, तो मैं एक सलाह देता हूँ। वह यह कि इन आत्माओं का इतना विश्वास नहीं करना चाहिये। थोड़ी देर के लिए वे भले ही आनन्द दें, परन्तु अन्त में वे भय ही देती है। यह दिखाने के लिए मैं तुम्हें हिरण्यगुप्त की कहानी सुनाता हूँ। सुनो।" उसने कहानी यो सुनानी शुरू की।

किसी जमाने में अलका नगर में हिरण्यगुप्त नाम का व्यापारी रहा करता

था। नगर में उसकी बड़ी दुकान थी। ऐसी कोई चीज़ न थी, जो उसमें न मिल सकती हो। रोज़ सैकड़ों आदमी उस दुकान में कुछ न कुछ खरीदने आते। कई साल दुकानदारी की, पर उसको दुकान से कोई फायदा नहीं हुआ।

इसकी वजह यह थी कि हिरण्यगुप्त बड़ा सीधा सादा, दयालु स्वभाव का था। कोई गरीब दुकान में आता तो उधार में माल दे देता। बच्चे अगर आते तो उनको इधर उधर की खाने की चीजें देता। इसलिये उधार देने से जो नुकसान होता था, वह भरा न जाता था।

खरीदनेवाले उसके हाथ में ठीक पैसा डाल रहे हैं कि नहीं, यह भी हिरण्यगुप्त न देखता। यह जान शरारती लोग उसके हाथ में खोटे सिक्के दे जाते। उनको बिना देखे ही वह तिजोरी में डाल लेता। अलका नगर के आधे से अधिक खोटे सिक्के उसकी तिजोरी में थे।

कई ने कई बार धोखा दिया। पर हिरण्यगुप्त हर किसी का हमेशा विश्वास करता। अगर किसी को कष्ट



झेलता देखता तो उन पर दया करता। इस विश्वास के कारण अगर कोई ब्राह्मण तुलसी जल या प्रसाद लाकर देता तो बिना उसके पूछे ही खाने पीने की चीज़े उसके घर भिजवा देता।

हिरण्यगुप्त की पत्नी हमेशा कोसती कुढ़ती रहती। जली-कटी सुनाती- "इतने दिनों से दुकान चला रहे हो। और कोई होता तो लाखों बनाता। तुमने कुछ न बनाया। आय की अपेक्षा उधार अधिक है। यह कब तक करते रहोगे?" उसने पति को बुरा भला कहा।

"क्या इतने दिन नहीं गुज़रे हैं? इसी तरह आगे भी गुज़र जायेंगे। एक आदमी को, जो यह रोये कि तीन दिन से माँड़ भी नहीं पिया है, मुट्ठी भर चावल देना क्या गलती है?" हिरण्यगुप्त हमेशा कहा करता।

"यह बात है तो जो कुछ है बाँट दो। यह व्यापार किसलिये?" पत्नी कहा करती।

परन्तु इस बीच एक घटना घटी। हिरण्यगुप्त जब तिजोरी में मुहरें ड़ाल रहा था तो उसे एक पीतल की मुहर दिखाई दी। वह देखने में सोने की मुहर लगती थी। पर थी वह पीतल की ही।

वह मुहर किसने दी थी, यह बहुत सोचने पर भी हिरण्यगुप्त याद न कर सका। उस दिन तो उसकी पत्नी और भी उबल पड़ी।

"तुम निरे निखट्टू हो। यह बात सब को मालूम हो गई है। सब तुम्हें देखकर हँस रहे हैं।" उसने सुनाई।

हिरण्यगुप्त को गुस्सा आ गया। "क्या मैं बिना जाने छोड़ूँगा कि यह किसकी करतूत है?" उसने पत्नी से कहा।

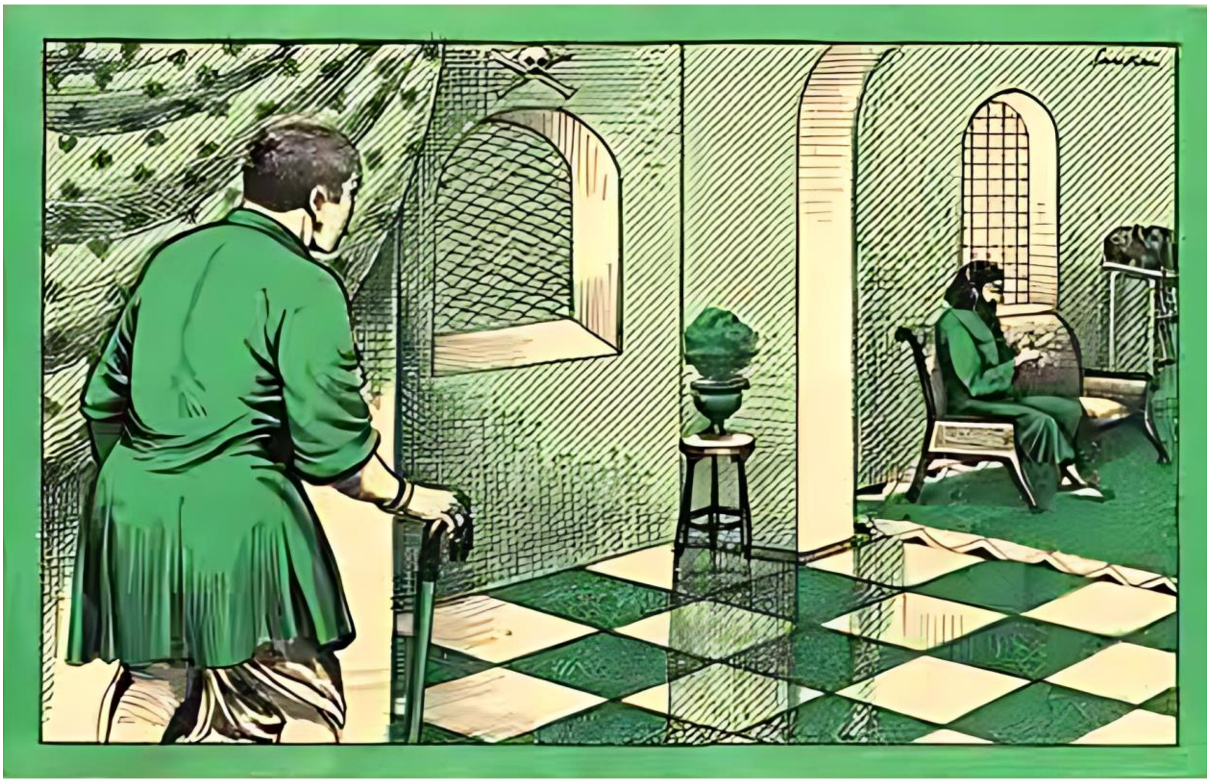


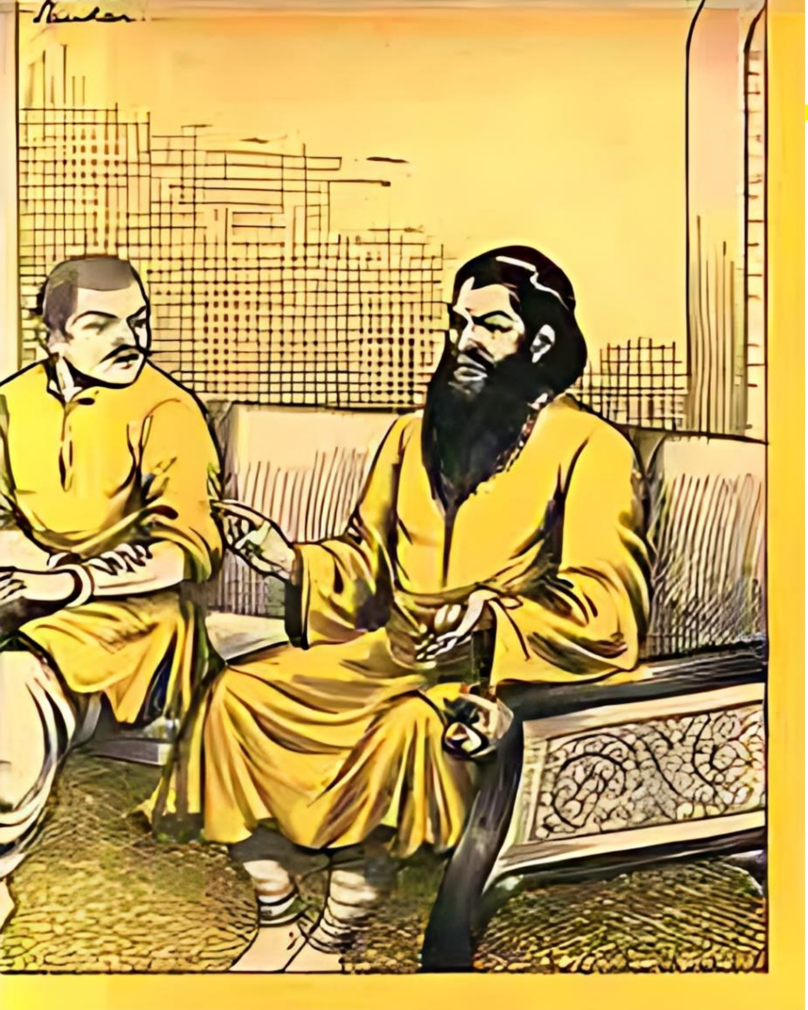
अलका नगर में एक बैरागी जादूगर था। उसे बहुत सी सिद्धियाँ प्राप्त थीं। वह इधर उधर के मन्त्र पढ़कर भूतों को भगानेवाला मान्त्रिक न था। हिरण्यगुप्त इस बैरागी के पास यह जानने के लिए गया कि उसे किसने खोटी मुहर दी थी। बैरागी ने हिरण्यगुप्त को बिठाकर पूछा-"किस काम पर आये हो?"

हिरण्यगुप्त ने कन्धे पर रखे दुपट्टे में से खोटी मुहर निकालकर बैरागी को दिखाते हुये कहा-"स्वामी! कोई इस पीतल की टिकिया को सोने की मुहर के रूप में मुझे सौंप गया है। अगर आपने यह बताया कि यह किसकी करनी है तो मैं आपको कुछ दक्षिणा दूँगा।"

बैरागी जोर से हँसा। "अरे भाई यह किसने दी है, में अभी बता सकता हूँ, पर उससे तेरा क्या लाभ? कल कोई और तुझे इसी तरह धोखा दे जायेगा। जो तुम में बीमारी है, पहले उसको चिकित्सा होनी चाहिये।" उसने कहा।

"बीमारी? मुझे तो कोई बीमारी नहीं है। मैं तो एकदम दुरुस्त हूँ, कभी जुकाम तक न आया।"





"अरे भाई, क्या तुम्हें आँखों की कमज़ोरी नहीं है?" बैरागी ने जोर से पूछा।

"बिल्कुल नहीं, स्वामी जी, मील दूरी पर अगर कोई आदमी हो तो उसे पहचान सकता हूँ। हथेली में राई के दानों को भी गिन सकता हूँ।" हिरण्यगुप्त ने झट कहा।

बैरागी फिर हँसा। "अरे भाई, यह कमज़ोरी वाकई आखों की नहीं है, आत्मा की है। तुम्हारी आत्मा बड़ी बीमार है। तुम पैसे की तरफ देख नहीं पाते हो। किसी गरीब को देखते हो तो तुम्हारा दिल पिघल उठता है। क्यों?" बैरागी ने पूछा।

"इसमें बीमारी क्या है स्वामी जी?" हिरण्यगुप्त ने पूछा।

"अरे यह कोई छोटी मोटी बीमारी है? इस बीमारी में तू व्यापार क्या करेगा? पाँच छः साल में तू दिवालिया हो जायेगा। कौड़ी भर भी तेरे पास न रहेगी। तुझे और तेरे बच्चों को, किसी को मुट्ठी भर दाने उधार देने होंगे। तेरी आत्मा की बीमारी बहुत भयङ्कर है। तुम उसकी चिकित्सा करवाते हो या उस बीमारी से बिगड़ने के लिए तैयार हो? तुम जो चाहो चुन लो।" बैरागी ने कहा।

हिरण्यगुप्त डर गया। वह व्यापार करके जीना चाहता था। उसने भयभीत हो बैरागी से पूछा-"स्वामी जी! मेरी बीमारी कैसे दूर होगी? मुझे क्या करना चाहिये? आपको कितनी दक्षिणा दूँ?"

"मुझे आठ सिद्धियाँ प्राप्त हैं। तेरी दक्षिणा की मुझे क्या ज़रूरत है? तुम अपनी आत्मा को मुझे देते जाओ। अगले अमावस्या तक मैं उसे ठीक कर दूँगा।

और तुझे वापिस कर दूँगा।" बैरागी ने कहा।

"मेरी आत्मा तो मेरे पास है, मैं उसे आपको कैसे दे सकता हूँ?" हिरण्यगुप्त ने कहा।

"बस यह मान लो कि तुम अपनी आत्मा देने के लिये तैयार हो। उसे कैसे लेना होगा, क्या करना होगा, यह सब में देख लूँगा।" बैरागी ने कहा।

"ऐसी बात है तो ले लीजिये स्वामी जी।" हिरण्यगुप्त ने कहा।

बैरागी ने आँखें मूँद ली, कुछ पढ़ा। "जय बेताल " ज़ोर से चिल्लाया। दोनों हाथों से उसने मच्छर सा कुछ पकड़कर कहा-"अब तुम जा सकते हो। अमावास्या के दिन ठीक आधी रात में तुम्हारे घर आकर तुम्हारी आत्मा वापिस कर दूँगा।"

"तब तक क्या मैं अपने रोजमर्रे का काम कर सकता हूँ स्वामी जी?" हिरण्यगुप्त ने पूछा।

"हाँ, हाँ, जरूर।" बैरागी ने कहा।

हिरण्यगुप्त आश्चर्य करता अपने घर गया। यद्यपि उसकी आत्मा बैरागी ने ले ली थी, तो भी उसे कुछ ऐसा न लगा जैसे कुछ बदल गया हो। अपने



वचन के अनुसार अमावस्या के दिन आधी रात को बैरागी हिरण्यगुप्त के घर आया।

हिरण्यगुप्त ने उत्कण्ठापूर्वक पूछा- "स्वामी जी! क्या मेरी आत्मा लाये? क्या उसकी बीमारी चली गई है? कहाँ है? मुझे एक बार देखने दीजिये।"

"तेरा देखना ऐसा ज़रूरी नहीं है। उसे ठीक जगह रखना होगा। तुम अपनी दुकान खोलो और अपनी तिजोरी दिखाओ।" बैरागी ने कहा।

हिरण्यगुप्त ने दुकान खोलकर तिजोरी दिखाई। बैरागी ने तिजोरी के छेद में से उसमें कुछ डाल दिया। उसमें शब्द हुआ।

"इसको इसमें से न निकालना।" बैरागी ने हिरण्यगुप्त से कहा।

आत्मा कैसी है, हिरण्यगुप्त ने यह देखना चाहा। इसलिए बैरागी के जाते ही उसने तिजोरी खोलकर देखा। उसे उसकी आत्मा सुनहले रङ्ग में चमकती पैसे के ऊपर नाचती दिखाई दी। होने को तो वह छोटी अंगुली के बराबर थी। पर उसको देखकर वह बड़ा खुश हुआ।

इस घटना के बाद हिरण्यगुप्त का व्यापार बड़ी अच्छी तरह चला। उधार माँगने वाले खरीददार ख़तम हो गये। उसकी दुकान के सामने जो भूखे मूर्छित हो जाते थे, उसको भी उसने एक पैसा न दिया। खोटे सिक्के भी उसकी तिजोरी में न गिरे। किसी के हाथ में कोई खोटा सिक्का होता तो हिरण्यगुप्त दूर से ही देख लेता था। जिस व्यक्ति को पहले धन की परवाह न थी अब वह जानता था, किस समय कितना धन तिजोरी में था।

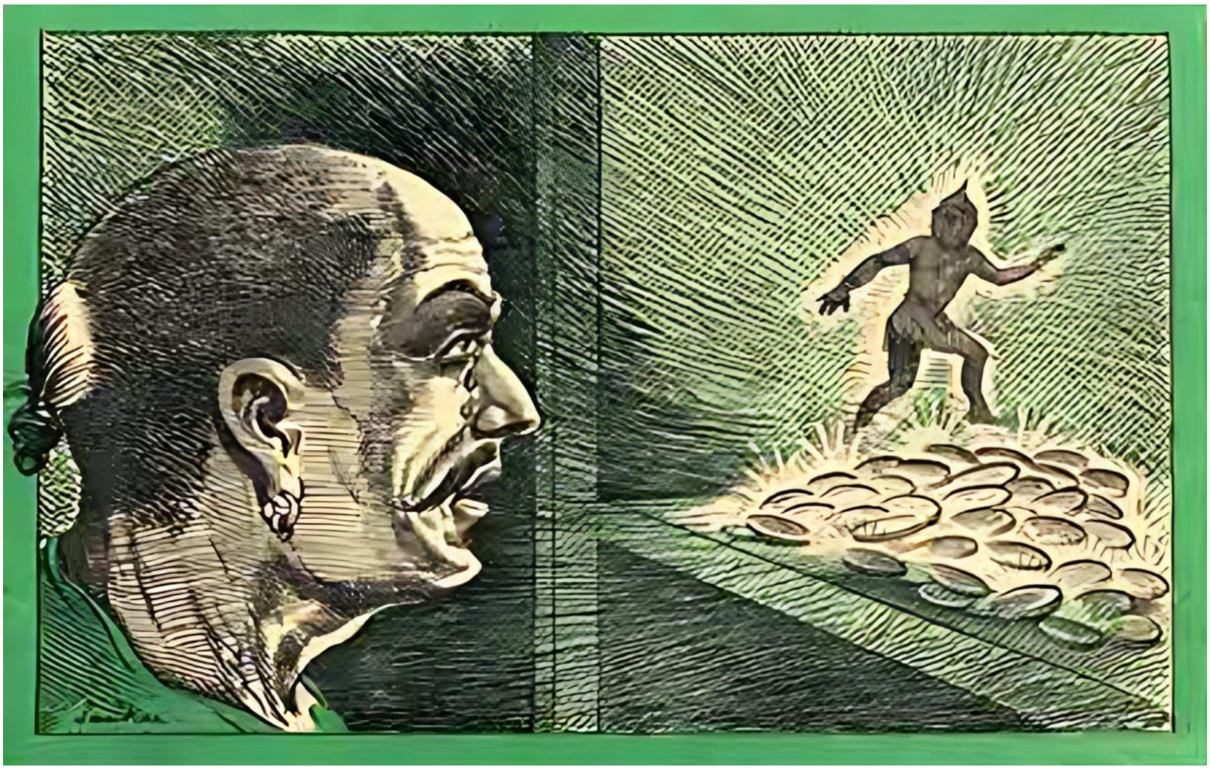


तिजोरी में धन बढ़ने लगा। उसके साथ उसमें पड़ी उसकी आत्मा भी बढ़ने लगी। कुछ दिनों बाद उस आत्मा के लिए बड़ी तिजोरी बनवानी पड़ी। थोड़े दिनों में वह उससे भी बड़ी हो गई। आखिर उसके लिए खजाने के एक बड़े कमरे की ज़रूरत हुई।

हिरण्यगुप्त की व्यापार की चतुरता के बारे में ख़बरें दूर दूर तक गई। वह करोड़पति हो गया।

उसे अब उसके बच्चे और पत्नी भगवान से अधिक समझते। परन्तु हिरण्यगुप्त के मन में कोई बीमारी घर कर गई। वह सालों से अपनी आत्मा रोज़ देखा करता था। वह आत्मा देखते देखते बदसूरत हो गई। उसके मुँह पर झुर्रियाँ पड़ गई। उसको देखते ही हिरण्यगुप्त को कुछ घृणा होती और कुछ डर भी लगता।

आखिर अस्सी वर्ष की उम्र में हिरण्यगुप्त ने खटिया पकड़ी। मरनेवाला था कि उसे नरक दिखाई दिया। वह डर के कारण जोर से चिल्लाने लगा। "मेरी आत्मा ने मुझे पापी बना दिया। मेरे



लिए नरक के द्वार खुल रहे हैं। मेरा उस बैरागी ने सत्यानाश कर दिया।" यह चिल्लाते चिल्लाते उसने प्राण छोड़ दिये।

बेताल ने यह कहानी सुनकर पूछा- "राजा! हिरण्यगुप्त का पापी होकर नरक जाने का क्या कारण था? कौन इसके लिए जिम्मेवार था? क्या उसकी पत्नी जो उसके न कमाने के कारण, जली कटी सुनाई करती थी? या वह बैरागी जिसने उसकी आत्मा की चिकित्सा की थी? या वह आत्मा, जिसने उससे पैसे जमा करवाये थे? अगर तूने इन प्रश्नों को जान बूझकर जवाब न दिया तो तेरा सिर फूट जायेगा।"

विक्रमार्क ने कहा-"गलती इनमें से किसी की न थी। पत्नी का यह सोचना कि उसका पति खूब कमाये, कोई ग़लती नहीं है। बैरागी ने आत्मा की चिकित्सा करने के लिए कहा था। उसने यह न कहा था कि वह स्वर्ग दिखायेगा। उसकी चिकित्सा का फल ठीक ही था। आत्मा को कोई गलतियाँ या पाप नहीं छूते। क्योंकि हर व्यक्ति को अपनी आत्मा को ठीक रास्ते पर रखना चाहिए। यह जिम्मेवारी उसी की है, जिसके पास आत्मा है। हिरण्यगुप्त का पापी होने का कारण हिरण्यगुप्त ही था। उसकी ग़लती यह थी कि उसने अपनी आत्मा को दूसरे को सौंप दिया था। ऐसा करके हिरण्यगुप्त ने स्वयं नरक को बुलावा दिया था।" इस तरह विक्रमार्क का मौन भङ्ग होते ही, बेताल शव के साथ अदृश्य हो गया। और पेड़ पर जाकर बैठ गया।

(कल्पित)





न्याय - निर्णय

किसी जमाने में, काश्मीर पर सुकेतु का राज्य था। श्रीनगर उस राज्य की राजधानी थी। श्रीनगर से दूर, एक नगर में एक न्यायाधिकारी रहा करता था। न्याय करने में, वह बहुत अक्लमन्दी दिखाने लगा था। उसकी कीर्ति सारे काश्मीर राज्य में फैल गई।

हर जगह उसकी प्रशंसा सुनकर, सुकेतु राजा को आश्चर्य हुआ। उस न्यायाधिकारी की न्यायविधि को स्वयं उसको देखने की इच्छा हुई। तुरन्त उसने मामूली आदमी के कपड़े पहने, उस शहर में गया जहाँ वह न्यायाधिकारी रहा करता था।

सुकेतु महाराजा दो दिन की सफ़र के बाद वहाँ पहुँचा। वह नगर का द्वार पारकर नगर में घुसनेवाला था कि रास्ते के किनारे खड़े एक लँगड़े भिखारी ने पास आकर कहा-"बाबू, भीख!"

राजा उसको कुछ पैसा देकर आगे चल दिया। परन्तु भिखारी ने उसका पीछा न छोड़ा-"बाबू, भीख!" उसने फिर कहा।

"दे तो दिया है और क्या चाहिये?" राजा ने कहा।

"बाबू, नगर में पेंठ चल रही है। लँगड़ा हूँ। उतनी दूर जा नहीं सकता हूँ। आप अपने पीछे घोड़े पर बिठा लीजिये।" लँगड़े भिखारी ने कहा।

"अच्छा, तो बैठो।" यह कहकर राजा, उसे पीछे बिठाकर नगर के चौक में गया। वहीं पेंठ लग रही थी।

श्रीमती हेमलता



"यह घोड़ा मेरा है। मैं नहीं उतरूँगा।" भिखारी ने जोर से कहा।

"इतना अन्याय तो मैंने कहीं भी न देखा। जानते हो, इस नगर में बहुत बड़ा न्यायाधिकारी है?"

"बड़े से बड़ा न्यायाधिकारी हो, वह यही फैसला देगा कि घोड़ा मुझ जैसे लँगड़े का है न कि तुम जैसे हट्टे कट्टे आदमी का।" मिखारी ने कहा।

"देखें, क्या कहता है। चल अदालत चल।" राजा ने कहा।

"मुझे कोई डर नहीं है। चल चलें।" भिखारी ने कहा।

"यहीं पेंठ है, अब तुम उतरकर जा सकते हो।" राजा ने कहा।

"पहले तुम उतरो।" भिखारी ने कहा।

यह सोचकर कि वह उत्तर नहीं पा रहा था और उसकी मदद चाहता था, राजा ने घोड़े से उतरकर भिखारी से कहा-"मेरा हाथ पकड़कर उतर आओ।"

"तू मुझे उतरने के लिए कहनेवाले कौन है? घोड़ा पर चढ़ा लिया था, क्या यह उसका एहसान है?" भिखारी ने पूछा।

"मेरे घोड़े पर मुझे बिठानेवाला तू कौन होता है? पागल की तरह न बात कर, उतर।" राजा ने कहा।

राजा ने सोचा कि देखें झगड़े का यह न्यायाधिकारी क्या फैसला देता है। राजा और भिखारी जब अदालत में पहुँचे तो

कई मुकदमों की सुनवायी हो रही थी।

एक पटवारी और एक किसान एक स्त्री के बारे में झगड़ा करके, अदालत में हाजिर थे। वह गूँगी थी। दोनों यह कह रहे थे कि वह उनकी पत्नी थी।

"अच्छा, आप आज इस स्त्री को यहाँ छोड़ जाइये। कल मैं फैसला दूँगा।" न्यायाधिकारी ने कहा।

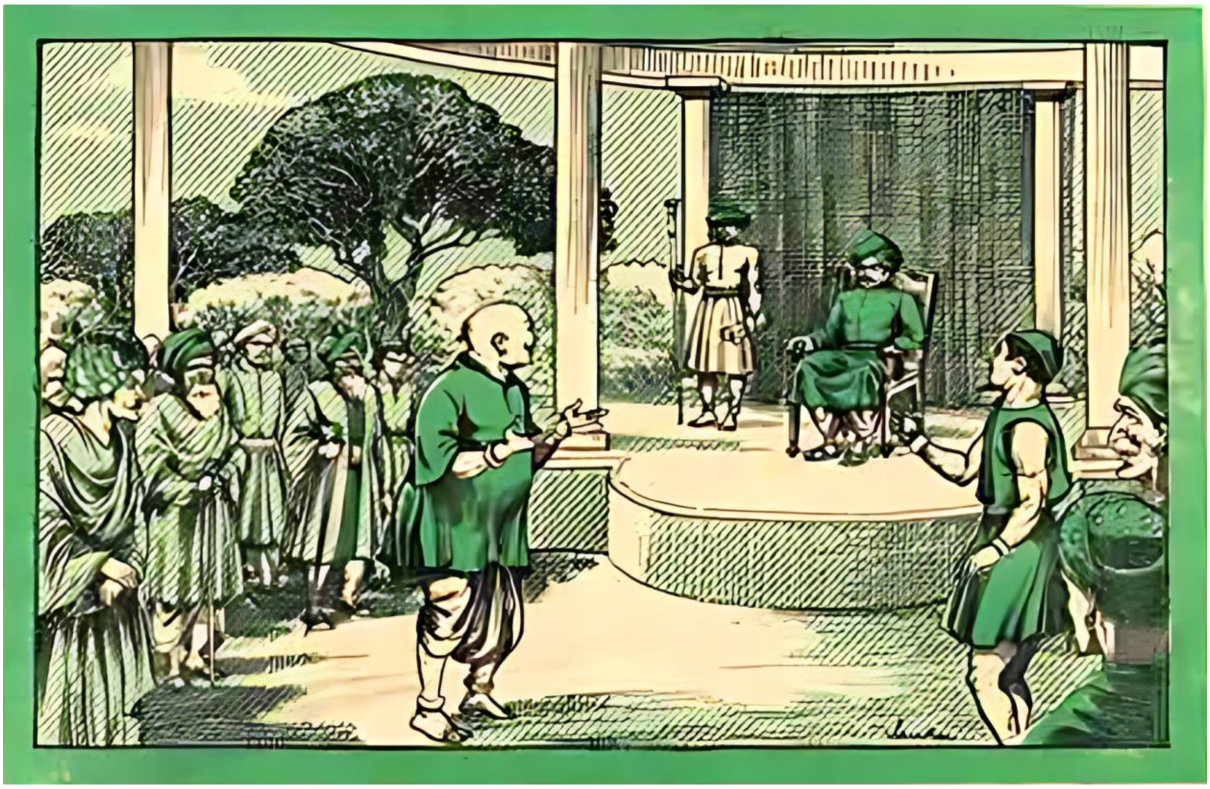
फिर एक कसाई और तेली आये। कसाई के हाथ में बहुत सारे टूटे हुए पैसे थे। तेली के हाथों में तेल था।

"हुजूर! इस कसाई ने मुझसे कहा कि अगर मैंने उसे एक मुहर की माँज दीं, तो वह मुझसे तेल खरीदेगा। जब मैं पैसे गिन रहा था तो उसने उन्हें छीन लिया और कहने लगा कि पैसा उसका था। हुजूर फैसला करें।" तेली ने कहा।

"हुजूर! यह सच है कि मैं इसके पास तेल खरीदने गया था। मैं जेब से पैसे निकालकर यह देख रहा था कि मेरे पास कितने पैसे हैं तो इसने मेरा हाथ पकड़कर कहा कि पैसे मेरे हैं। हुजूर फैसला करें।" कसाई ने कहा।

जब दोनों ने यह शपथ की कि उन्होंने सच कहा था तो न्यायाधिकारी ने कहा-"उन पैसों को मेरे पास रखते जाओ। कल आना। फैसला दूँगा।"

उसके बाद घोड़े के झगड़े की सुनवाई हुई।





"हुजूर! मैं श्रीनगर का हूँ। आज पेंठ में कुछ खरीदने के लिए मैं अपने घोड़े पर सवार होकर यहाँ आया। नगर द्वार के पास इस लँगड़े आदमी ने मुझसे भीख माँगी। मैंने कुछ पैसे दे दिये। फिर उसने मुझे अपने घोड़े पर सवार कर पेंठ के पास ले जाने के लिए कहा। मैने वह भी किया। पेंठ के पास उसका उतरना तो अलग, उल्टा यह कहने लगा कि घोड़ा उसका है।" राजा ने कहा।

"हुजूर! मैं लँगड़ा हूँ। इसलिए जब कभी कहीं जाना होता है तो इसी घोड़े पर ही जाता हूँ। पेंठ के लिए आ रहा था कि यह आदमी मुझे नगर के द्वार के पास नीचे पड़ा हुआ दिखाई दिया। मैंने इससे पूछा कि क्यों ऐसे पड़े हुए हो। इसने कहा कि मैं बहुत थक गया हूँ, मुझे पेंठ तक ले चलो। मैं उसे पेंठ तक ले क्या गया कि आफत मोल ले ली। कहने लगा कि घोड़ा मेरा है। आप कृपया फ़ैसला कीजिये।" लँगड़े ने कहा।

न्यायाधिकारी ने एक क्षण सोचा- "इस घोड़े को यहाँ छोड़ जाओ। कल आना। में फैसला दूँगा।" उसने कहा।

अगले दिन अदालत में फरियादी और देखनेवाले आये।

न्यायाधिकारी ने पटवारी को बुलाकर कहा-"यह स्त्री तुम्हारी पत्नी है। तुम इसे ले जाओ। इस किसान को, मैं पचास कोड़ों की सज़ा देता हूँ।

फिर न्यायाधिकारी ने दूसरे फरियादी को बुलाकर कहा-"यह पैसा तेरा है। ले जाओ। तेली ने ग़लत शिकायत की थी। मैं उसे पचास कोड़े की सज़ा देता हूँ।"

फिर न्यायाधिकारी ने राजा और लँगड़े को बुलाकर पूछा- "मैंने तुम्हारे घोड़े

को बीस घोड़ों के बीच बँधवा दिया है। क्या उसे पहचान सकोगे?

राजा ने कहा कि पहचान सकता हूँ। लँगड़े ने भी कहा कि वह पहचान लेगा। न्यायाधिकारी ने राजा से कहा-"पहले तुम मेरे साथ आओ।" वह उसे साथ ले गया।

बीस घोड़ों के बीच राजा ने आसानी से अपना घोड़ा पहचान लिया।

"अच्छा, तुम अदालत में जाकर लँगड़े को भेजो।" न्यायाधिकारी ने कहा। राजा ने वही किया। लँगड़े ने भी राजा की तरह घोड़े को पहचान लिया। न्यायाधिकारी ने अदालत में आकर राजा से कहा-"वह घोड़ा तुम्हारा है। झूठी शिकायत करने के कारण मैं लँगड़े को पचास कोड़ों की सज़ा देता हूँ।

इसके साथ उस दिन अदालत का काम ख़तम हो गया। राजा को वहाँ खड़ा देखकर न्यायाधिकारी ने पूछा-"अभी यहीं क्यों खड़े हो?"

आपका न्याय बहुत सन्तोषजनक है। इस बारे में आपसे बात करने के लिए खड़ा हूँ। फैसला देना आसान काम नहीं है। और मेरी फरियाद में



आपने ठीक फैसला दिया है। औरों के बारे में भी आपने ठीक फैसला ही दिया होगा। परन्तु इतनी अक्लमन्दी से आप कैसे न्याय करते हैं?" राजा ने पूछा।

"वह इतना मुश्किल नहीं है, जितना कि तुम समझ रहे हो। उस स्त्री की ही बात लो। कल मैं उसे अपने घर ले गया था। घर जाते ही मैने उससे कलमदान धोकर उसमें स्याही भरने के लिए कहा। उसने वह काम ऐसा किया जैसे प्रति दिन करती आ रही हो। मामूली किसान की

पत्नी वह न करती। इसलिए यह साफ हो गया कि वह पढ़े-लिखे पटवारी की ही पत्नी थी।"

"आपने यह कैसे निर्णय किया कि रुपये कसाई के ही थे?" राजा ने पूछा।

तुमने देखा ही होगा कि तेली के हाथ तेल से लथपथ थे। अगर वे रुपये उसके होते तो उनमें तेल लगा हुआ होता। मैंने उनको पानी में डालकर देखा। एक बूँद तेल भी पानी पर न तैरा।" न्यायाधिकारी ने कहा।

"हमारे झगड़े में आपने यह कैसे तय किया कि घोड़ा मेरा है ? क्या लँगड़े ने घोड़ा नहीं पहिचाना था?" राजा ने पूछा।

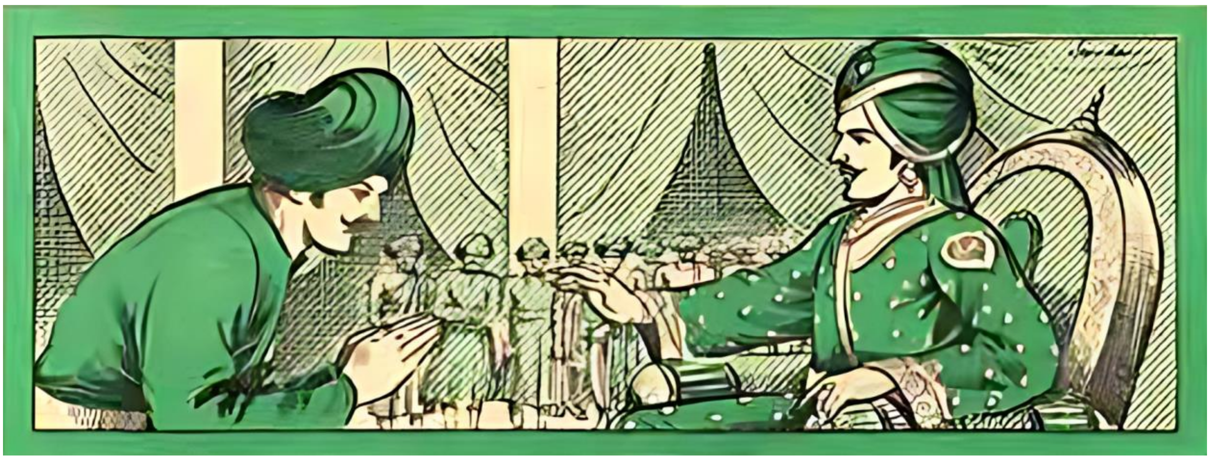
"पहिचान लिया था। पर मैं पहले ही जानता था कि तुम दोनों घोड़ा पहिचान कोगे।" न्यायाधिकारी ने कहा।

"फिर आपने कैसे यह जाना कि घोड़ा मेरा है?" राजा ने फिर पूछा।

"मैंने यह नहीं देखा था कि तुम में से कौन घोड़ा पहचानता है, पर देखा यह था कि घोड़ा तुम में से किसको पहचानता है। उसने तुम्हें ही पहचाना।" न्यायाधिकारी ने कहा।

सुकेतु उस न्यायाधिकारी की प्रखर बुद्धिमता से बहुत प्रभावित हुआ। श्रीनगर वापिस जाने के बाद उसने उस न्यायाधिकारी को बुलवाया और उसको एक जागीर ईनाम में दी।

जब न्यायाधिकारी को यह मालम हुआ कि उसने राजा का ही फैसला किया था तो उसके आनन्द की सीमा न रही।





त्रिलङ्ग देश में इधर उधर के राजाओं का शासन जब खतम होगया तो राजवंश के लोग जहाँ तहाँ बिखर गये और अपने किलों को छोड़कर ग्रामों में बस गये। पर उनमें से कुछ अपने घमण्ड में, किलों में ही रहते रहे।

इस प्रकार का जीवन व्यतीत करनेवालों में प्रसेन एक था। एक पहाड़ पर उसका किला था। पहाड़ का नाम ऊँचा टीला था। वह अपने नौकर-चाकरों के साथ वहीं रह रहा था और अपने गरीब बन्धु बान्धवों का पालन-पोषण कर रहा था।

प्रसेन के सिवाय एक लड़की के और कोई न था। उसका नाम था ललिताङ्गी। अगर उसने उसकी शादी कर दी तो वह जिन्दगी भर आराम से रह सकता था। उसके बाद उस क़िले में और किसी को तो रहना न था।

परन्तु ललिताङ्गी का विवाह पिता के लिये एक समस्या थी। वह न चाहता था कि किसी ऐरे गैरों को अपनी लड़की दे। ललिताङ्गी बहुत सुन्दर थी। सम्राट के राजकुमार के लायक थी। राजवंश से सम्बन्धित परिवारों में ही उसके लिए वर खोजना था। उन वंशों में आधे से अधिक उसके शत्रु थे। शत्रुता नयी न थी। पुश्त दर पुश्त चली आ रही थी। इस परम्परा को प्रसेन नहीं तोड़ना चाहता था।

ऊँचे टीले के चार कोस दूरी पर लाल पहाड़ पर जयसिंह रहा करता था। उसका लड़का बालचन्द्र बहुत खूबसूरत था। वह हर तरह से ललिताङ्गी के



योग्य वर था। परन्तु जयसिंह, प्रसेन की शत्रु श्रेणी में था। उन दोनों ने कभी एक दूसरे को देखा भी न था। प्रसेन के परदादा के समय में उनका और इनका भयङ्कर युद्ध हुआ था। उसके बाद दोनों के सम्बन्ध टूट गये।

आख़िर प्रसेन ने अपनी लड़की के लिए एक वर खोज निकाला। वह काली पहाड़ी पर रहा करता था। काली पहाड़ी के राजाओं का और ऊँचे टीले के राजाओं का पुराना सम्बन्ध था। उनका भी बड़ा वंश था। वर, जयन्त, बादशाह की नौकरी में था। वह नवयुवक था। वधू पक्षवालों में किसी ने उसे न देखा था। परन्तु यह मालूम कर लिया गया कि वह बदसूरत न था।

प्रसेन ने अपने आदमियों को काली पहाड़ भेजकर विवाह निश्चित किया। जयन्त ने ख़बर भिजवाई कि विवाह के दो दिन पहले अपने नौकर, व सिपाहियों सहित वह पहुँच जायेगा।

अपने होनेवाले दामाद का स्वागत करने के लिए प्रसेन के यहाँ बड़े जोर-शोर से तैयारियाँ होने लगीं। किले तक पहुँचनेवाली सड़क साफ की गयी। सड़क पर मशालों का भी इन्तज़ाम किया गया। दावतों के लिए शिकार आदि का प्रबन्ध किया गया। जिस दिन वर को आना था सब तैयारी पूरी करके उसकी प्रतीक्षा में बैठे थे। शाम हुई, वर न आया। सब निराश हो, भोजन के लिए बैठ गये।

जयन्त तीस आदमियों को लेकर उसी दिन निकल पड़ा, जिस दिन उसने आने का वायदा किया था। परन्तु रास्ते में उसको एक मित्र दिखाई दिया। वह मित्र बालचन्द्र के अतिरिक्त और कोई न था।

बालचन्द्र को देखते ही जयन्त को बड़ी खुशी हुयी। छुटपन में वे एक जगह मिले थे। उन दोनों के मामाओं का एक ही नगर था। जयन्त ने मित्र से अपनी शादी के बारे में कहा। "सुनते हैं, ललिताङ्गी बहुत सुन्दर है। क्या तुम उसके बारे में कुछ जानते हो?" उसने पूछा।

"मैंने नहीं सुना है। मैं उनके बारे में कुछ नहीं जानता हूँ।" बालचन्द्र ने कहा।

"कल शाम तक में ही देख लूँगा। उनका बहुत प्रतिष्ठित वंश है। सुना है प्रसेन की आन शान कुछ भी कम नहीं हुई है। उन जैसों की लड़कियों से शादी करने में ही बड़प्पन है। और अगर वधू सुन्दर हो तो कहने ही क्या? मैं अपने को बहुत सौभाग्यशाली समझता हूँ।" जयन्त ने कहा।

बालचन्द्र अपने गाँव जा रहा था। दोनों लाल पहाड़ी तक साथ गये। छुटपन की बातें करते, दोनों साथी अपने पड़ाव से निकले। जयन्त ने अपने आदमियों को बाद में आने के लिए कहा।



पड़ाव से निकलने के थोड़ी देर बाद दोनों मित्रों ने एक घाटी में प्रवेश किया। उन्हें वहाँ डाकू दिखाई दिये। यद्यपि डाकू सात आठ थे तो भी उन दोनों ने तलवारें निकाल कर उनका खूब मुकाबला किया। थोड़ी देर बाद जयन्त के आदमी आ गये। डाकू भाग गये।

परन्तु जयन्त बुरी तरह घायल हो गया। यह डाकुओं के भाग जाने के बाद ही, वालचन्द्र जान सका। बालचन्द्र जिस काले घोड़े पर सवार था, वह बहुत तेज़ था। वह भी बड़ा पराक्रमी था। इसलिये

उसे तनिक भी चोट न लगी। सफ़ेद घोड़ा इतना तेज़ न था। जयन्त का उसके पेट में तलवार की चोट लगी थी। बालचन्द्र ने अपने मित्र की मरहमपट्टी की। उसको एक जगह लिटाकर, सेवा शुश्रूषा की। पर जयन्त जान गया कि वह जीवित न रह सकेगा। उसने अपने मित्र से कहा-"भाई.... अन्तिम बड़ी समीप आ गई है। प्रसेन मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। उन्होंने बहुत-सी तैयारियाँ कर रखी होंगी। तुम तुरत ऊँचे टीले तक जाओ और उनसे इस दुर्घटना के बारे में कहो और मेरी तरफ से उनसे माफ़ी माँगो, क्योंकि मैंने उनको निराश किया है। तुम मुझे यह वचन दो कि बिना यह काम किये और कोई काम न करोगे। मेरे शव को काले पहाड़ भेजने की ज़रूरत नहीं है। मेरी अन्त्येष्टि क्रिया इस घाटी में ही कर दो। यह काफी है कि काले पहाड़ तक मेरी मृत्यु की वार्ता पहुँचा दी जाये।" उसके बाद जयन्त ने प्राण छोड़ दिये।

अपने मित्र का अन्त्येष्टि संस्कार करके, बालचन्द्र काले घोड़े पर सवार हो, ऊँची टीले की ओर जल्दी रवाना हुआ। मित्र



मर गया था, इसलिये तो वह दुखी था ही, फिर इसलिये भी दुखी था कि उसको अपने मुख से यह दुखद वार्ता प्रसेन को बतानी होगी और प्रसेन की दृष्टि में वह जानी दुश्मन था, यह बात भी उसके मन को बींध रही थी।

रास्ते में वह कहीं न रुका। रात को काफी देर बाद वह ऊँचे टीले के किले में पहुँचा। प्रसेन के परिवार को, जो तभी भोजन करने के लिए बैठा था घोड़े की आहट सुनाई दी। थोड़ी देर में, बालचन्द्र उनके पास आ पहुँचा।

उसको देखकर, सबने सोचा कि वह वर ही होगा। ललिताङ्गी, भोजन छोड़कर कहीं और चली गई। परन्तु जाने से पहले उसने उसको अच्छी तरह देख लिया। वह भी उसके सौन्दर्य को देखकर चकरा गया।

फिर उसने प्रसेन की ओर मुड़कर कहा-"मुझे, इस तरह आने के लिए माफ कीजिये। रास्ते में एक ऐसी घटना घटी, जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती थी।"

"वह बात बाद में भी की जा सकती है। पहले मुँह हाथ धोकर, भोजन करो।" प्रसेन ने कहा।





थोड़ी देर में बालचन्द्र भी भोजन के लिए बैठ गया। वह किसी भी हालत में, यह कहकर कि वह जयसिंह का लड़का था प्रसेन के मन को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहता था। जयन्त की मृत्यु की बात बताकर वह चला जाना चाहता था।

उसने कभी यह न सोचा था कि वहाँ के लोग उसे ही जयन्त समझने की गलती करेंगे। वे क्या समझ रहे थे, भोजन करते समय उसे मालूम हो गया था।

"बर, वधू से कोई कम सुन्दर नहीं है।" एक ने कहा।

तुरन्त एक और ने कहा- "प्रसेन किम्मतवाला है, उसकी लड़की भी।"

बालचन्द्र को ये बातें बाण की तरह चुभ रही थीं। यह जान कर कि वे सब यह सोच रहे थे कि ललिताङ्गी तभी उसकी पत्नी हो चुकी थी, बड़ा दुख हुआ क्यों कि उसको देखते ही वह उससे प्रेम करने लगा था। पर वह अच्छी तरह जानता था कि उसका उससे विवाह होना असम्भव था। प्रसेन आत्महत्या कर लेगा, पर अपनी लड़की की मुझ से शादी न करेगा।

भोजन समाप्त हुआ। सब उठे। बालचन्द्र धीमे से बाहर खिसक गया। वह वहाँ नहीं है, पहले पहल प्रसेन को पता लगा। वह जल्दी जल्दी बाहर गया। बाहर मशालों की रोशनी में, काला घोड़ा चढ़कर वह जाता हुआ दिखाई दिया।

"अभी कहाँ जा रहे हो? तुम्हारे ठहरने का प्रबन्ध किया है।" प्रसेन ने कहा।

"मैं आपसे एक बार मिलने के लिए आया हूँ। असली बात तो यह है कि आज सवेरे ही मुझे डाकुओं ने मार दिया था। दुपहर को मेरा दहन भी कर दिया

गया था। यह बात मुझे आपने कहने न दी। अब मुझे जाने की अनुमति दीजिये। कहते हुए बालचन्द्र ने लगाम छोड़ दी। उसका काला घोड़ा हवा से बातें करता लुप्त-सा हो गया।

प्रसेन यह सुनने के बहुत देर बाद तक काठ-का-सा हो गया। काटो तो खून नहीं। फिर उसने जाकर जो कुछ उसने सुना था, सब को सुनाया। सब हैरान थे।

उसने वर का भूत देखा था। यह सुनते ही, ललिताङ्गी लगातार आसुँ बहाने लगी। क्योंकि बालचन्द्र को देखते ही उसने उसे वर लिया था। दासियों ने उसे मुबारकवाद भी दिये थे।

जयन्त को डाकुओं ने मार दिया था, और उसका दहन संस्कार भी हो गया था, यह अगले दिन ही साबित हुआ। इस कारण, जो अतिथि पिछले दिन आया था, वह भूत था, यह बात और पक्की हो गई।

कुछ दिन बीत गये। ललिताङ्गी ने खाना-पीना छोड़ दिया। वह उस भूत के लिए ही तड़पने लगी। एक दिन चान्दनी रात में वह ठण्डी हवा



के लिए अपनी खिड़की में जा बैठी। नीचे देखती है तो उसे वही व्यक्ति काले घोड़े पर बैठा दिखाई दिया, जिसकी शक्ल उसके मन में चक्कर काट रही थी। ललिताङ्गी बिना कुछ कहे लगातार उसकी ओर देखती रही। वह भी उसकी ओर ध्यान से देखता जाता था।

इतने में ललिताङ्गी की दासी ने आकर पूछा-"क्या है वह?" उसने भी खिड़की से नीचे देखा। तुरन्त वह "अरे ! भूत" जोर से चिल्लाई, और बेहोश गिर गई। ललिताङ्गी ने उसके मुँह पर पानी छिड़क कर नीचे जो देखा तो कोई न था।

भूत वर फिर दिखाई दिया है। यह जान सिवाय ललिताङ्गी के और सब बहुत घबराये। उसके कमरे में सोने के लिए सब दासियों ने इनकार कर दिया। ललिताङ्गी ने और किसी कमरे में सोने से इनकार कर दिया क्योंकि उस भूत को देखने के लिए वह बेहाल हो रही थी। वह उसके साथ शादी करने के लिए भी तैयार थी।

ललिताङ्गी को वे समझा-बुझा न सके। उसको अपने कमरे में सोने दिया। एक सप्ताह बीत गया। उसके बाद एक दिन ललिताङ्गी गायब हो गई। जब सवेरे दासियाँ कमरा देखने गई तो कमरा खाली था। वह वहाँ न थी। लोगों ने कहा कि भूत ललिताङ्गी को उठा ले गया था। परन्तु एक सप्ताह बाद, लाल पहाड़ी पर से एक पत्र आया। वह पत्र जयसिंह ने लिखकर भेजा था।

"आपकी लड़की ललिताङ्गी यहाँ सुरक्षित पहुँच गई है। आपकी अनुमति से उस लड़की का मैं बालचन्द्र से विवाह करना चाहता हूँ। उस लड़की के कारण हम परस्पर हमेशा के लिए मित्र हो सकेंगे, यह आशा करता हूँ। सपरिवार आप विवाह में उपस्थित होकर, वधू के साथ वर को भी आशीर्वाद दें, यह मेरी विनम्र प्रार्थना है।"

"मेरी पुत्री भूत की अपेक्षा शत्रु से शादी करे तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। मैं नहीं जानता था कि जयसिंह इतना अच्छा आदमी है।" प्रसेन ने कहा।

शुभमुहूर्त में, ललिताङ्गी और बालचन्द्र का वैभव के साथ विवाह हुआ।





[२]

[चीन देश में एक गरीब लड़का रहा करता था। उसका पिता गुजर गया था। माँ कितनी हो मुसीबतें झेलती उसका पालन पोषण कर रही थी। वह अपने साथियों के साथ गलियों में अवारागिर्दी करता फिरता। कोई कामाधाम न करता। इतने में उस शहर में किसी और देश से कोई जादूगर आया। अलादीन से उसे काम था। इसलिये उसने उससे कहा कि वह उसका चाचा था। इस तरह उसने उसकी माँ से भी परिचय कर लिया। उसकी माँ ने सोचा कि यह नया सम्बन्धी उसके लड़के को कामकाजी बना देगा।]

खुशी के कारण उस दिन अलादीन रात भर सो न सका। सवेरे होते ही किसी ने घर का दरवाजा खटखटाया। अलादीन की माँ ने जाकर दरवाजा खोला। बाहर जादूगर था। उसने पूछा-"अलादीन क्या कर रहा है?" यह प्रश्न सुनते ही अलादीन एक छलाँग में दरवाजे के पास पहुँचा। उसने अपने "चाचा" को गले लगा लिया।

फिर, जादूगर, अलादीन का हाथ पकड़ कर उसे बाजार ले गया। दोनों एक कपड़े की दुकान में गये। "इसके लिए कुछ अच्छी पोषाक दिखाइये।" जादूगर ने दुकानदार से कहा। दुकानदार ने कुछ



बहुत कीमती वस्त्र दिखाये। "इनमें से जो तुम्हे पसन्द आयें, ले लो।" जादूगर को ने अलादीन से कहा। उसने सबसे अच्छी पोशाक चुन ली। जादूगर ने उसके दाम दे दिये।

दोनों वहाँ से स्नानागार गये। नहा धोकर अलादीन ने नये कपड़े पहन लिये। अपने कपड़े देखकर वह फूला न समाया।

फिर दोनों मिलकर व्यापारियों की गली में गये। जादूगर ने वहाँ अलादीन को यह दिखाया- व्यापारी कैसे माल खरीदा बेचा करते थे। "बेटा, क्यों कि तुम भी व्यापारी बनने जा रहे हो, इसीलिए इस गली में आया करो और व्यापारियों से जान पहचान बढ़ाया करो।" जादूगर ने अलादीन को सलाह दी।

दुपहर तक वे नगर में तरह तरह की चीजें देखते रहे। बड़े बड़े मकान मस्जिदों का चक्कर भी लगा आये। फिर वे एक भोजनशाला में गये। वहाँ उनको चान्दी के थालों में भोजन परोसा गया। भोजन के बाद, जादूगर, अलादीन को राजमहल दिखाने ले गया।

वह देखने के बाद, जादूगर, अलादीन को ऐसी जगह ले गया, जहाँ विदेशी व्यापारी ठहरा करते थे। जादूगर भी वहीं रह रहा था। उसने शाम को वहाँ ठहरे हुये व्यापारियों को दावत दी। दावत के समय उसने अलादीन का परिचय देते हुये कहा-"यह मेरे बड़े भाई का लड़का है।"

अन्धेरा होते होते जादूगर ने अलादीन को उसके घर पहुँचा दिया। अपने लड़के की नई पोषाक देख कर अलादीन की माँ की खुशी का ठिकाना न रहा।

"देवर, हम तुम्हारा कर्ज कभी न कभी चुका पाएँगे।" उसने कहा।

"इसमें कर्ज क्या है भाभी? क्या वह मेरा लड़का नहीं है? जाने उसका पिता उसके लिए क्या क्या करता.... मैंने उससे अधिक क्या किया है? तुम उसके भविष्य के बारे में कोई फिक्र न करो।" जादूगर ने कहा।

"तुम्हारा भला हो, सौ वर्ष जिओ। इसकी देखभाल का जिम्मा तुम्हारे सिर पर है। वह तुम्हारी बात माने और तुम्हारा नाम रोशन करे, यही मेरे लिए काफ़ी है।" अलादीन की माँ ने कहा।

"तब अलादीन निरा बचा था। अब बड़ा हो गया है। मैं तो यह चाहता हूँ कि वह अपने पिता की तरह नाम कमाये और बुढ़ापे में तेरी परवाह करे। कल शुक्रवार है; इसलिये दुकानें बन्द कर दी जायेंगी। परसों अलादीन की दुकान खुलवा दूँगा। कल सवेरे आकर उसको ले जाऊँगा। शहर के बाहर के बाग-बगीचे दिखाऊँगा। वहाँ शहर के बड़े बड़े लोग घूमने फिरने जाते हैं। मन बहलाव करते हैं। हम इसका



उन लोगों से परिचय करायेंगे।" यह कह कर, जादूगर उससे इजाजत लेकर अपने रहने की जगह चला गया।

उस दिन, रात भर अलादीन अपने भविष्य के बारे में सपने देखता रहा। वह अगले दिन बहुत सवेरे ही उठ गया। जादूगर ने जब आकर दरवाजा खटखटाया तो उसने दरवाजा खोल दिया। जादूगर ने उसको गले लगाकर कहा-"बेटा, मैं तुझे आज ऐसी चीज़े दिखाऊँगा, जो तूने अपने जन्म में कभी न देखी होगी।"

दोनों हाथ मिलाकर चलते चलते शहर के फाटक से बाहर चले आये। वहाँ बड़े बड़े बगीचे थे। और बगीचों में रईसों के मकान थे। अलादीन ने उन्हें कभी न देखा था।

शहर से वे बहुत दूर चले गये। वे थक गये। आराम करने के लिए वे एक बगीचे में गये। वहाँ एक फव्वारा था। और उसके चारों ओर पीतल के चमकते शेर थे। जादूगर ने एक थैला निकाला। उसमें से फल, चबैना निकालकर, अलादीन को देते हुये कहा-"भूख लग रही होगी। इन्हे खाओ, बेटा।" खाने पीने के बाद वे दोनों फिर साथ निकले।

"चाचा, हमें अभी कितनी दूर जाना है? बगीचे सब पार करके आ ही गये हैं। आगे सिवाय उस पहाड़ के कुछ नहीं है। आओ, वापिस चलें। चलते चलते मेरे पैरों में छाले पड़ गये हैं।" अलादीन ने कहा।

"अरे मर्द नहीं हो क्या? इतने में ही थक गये। अब तुम्हे एक और तरह का बगीचा दिखाने जा रहा हूँ। इन सब बगीचों से वह और ज्यादा सुन्दर है।



संसार में किसी महाराजा के पास भी वैसा बाग न होगा।" जादूगर ने कहा।

अलादीन चलता चलता कहीं थक न जाये, इसलिये जादूगर ने उसको तरह तरह की कहानियाँ सुनाई। इतने में वे दोनों एक जगह पहुँचे। यह जगह देखने के लिये ही जादूगर एक और देश से चीन आया था।

"हमें जहाँ जाना था, वहाँ पहुँचे गये हैं। थोड़ी देर आराम करो। फिर तुझे कई अजीब चीजें दिखाऊँगा। ऐसी चीजें, जिनकी कभी किसी आदमी ने कल्पना भी न की होगी।" जादूगर कहा।

अलादीन के कुछ देर तक आराम करने के बाद जादूगर ने उसको ईन्धन चुन लाने के लिए कहा। उसने कहा कि आग जला कर उसे कितनी ही अजीब चीजें दिखायेगा।

यह सोचकर कि जाने क्या क्या "चाचा" दिखायेंगे, वह पेड़ों के पास सूखी सूखी लकड़ियाँ इकट्ठी करके गट्ठर बाँधकर जादूगर के पास ले गया। जादूगर ने उस ईन्धन से आग जलाई,





जब वह खूब बढ़ गई तो उसमें एक डिब्बी में से कोई चूर्ण लेकर छिड़ककर वह कुछ मन्त्र पढ़ने लगा।

तुरन्त सब जगह अन्धेरा छा गया। भूमि काँप-सी उठी। फिर भूमि फटी और अन्दर सङ्गमरमर का पत्थर दिखाई दिया। उस पर एक ताम्बे का छल्ला लगा हुआ था।

यह देखकर अलादीन की अक्ल जाती रही। उसने भाग जाना चाहा। पर जादूगर ने उसे पकड़ लिया..... उसके सिर पर चोट मारी। चोट के कारण अलादीन बेहोश गिर गया। जादूगर को जादू के बल से उसके होश लाने पड़े।

अलादीन ने पूछा-"मैंने कोई गलती की है क्या, इसी वजह से मुझे पीटा है?"

जादूगर ने उससे धीमे से कहा-"बेटा; मैंने तुम्हे इसलिये पीटा था कि तुम बचपन छोड़ दो और अपने को बड़ा समझो। मैं तुम्हारे पिता का भाई हूँ। तुम्हारा चाचा हूँ। मेरी बात मानना तुम्हारा कर्तव्य है। अगर तुमने मेरी बात मानी तो मैं तुम्हें इस संसार के सबसे बड़े सम्राट से अधिक धनी बना दूँगा। इसलिए जो मैं कहूँ उसे होशियारी से सुनो। तुमने देख ही लिया होगा..... कि मेरे मन्त्र बल के कारण जमीन कैसे फट गई थी। उस सङ्गमरमर के पत्थर के नीचे बहुत बड़ा खजाना है। उसको उठाने की शक्ति तुम में ही है, दुनियाँ में और किसी में नहीं। तुम्ही उसे उठाकर, उसके नीचे की सीढ़ियों पर जा सकते हो। जो मैं कहूँ, करो.... जो खजाना वहाँ मिलेगा, उसे हम दोनों आपस में बाँट लेंगे।" जादूगर ने कहा।

यह सुन अलादीन चोट की दर्द भी भूल गया। "चाचा, जो मुझे करना है;

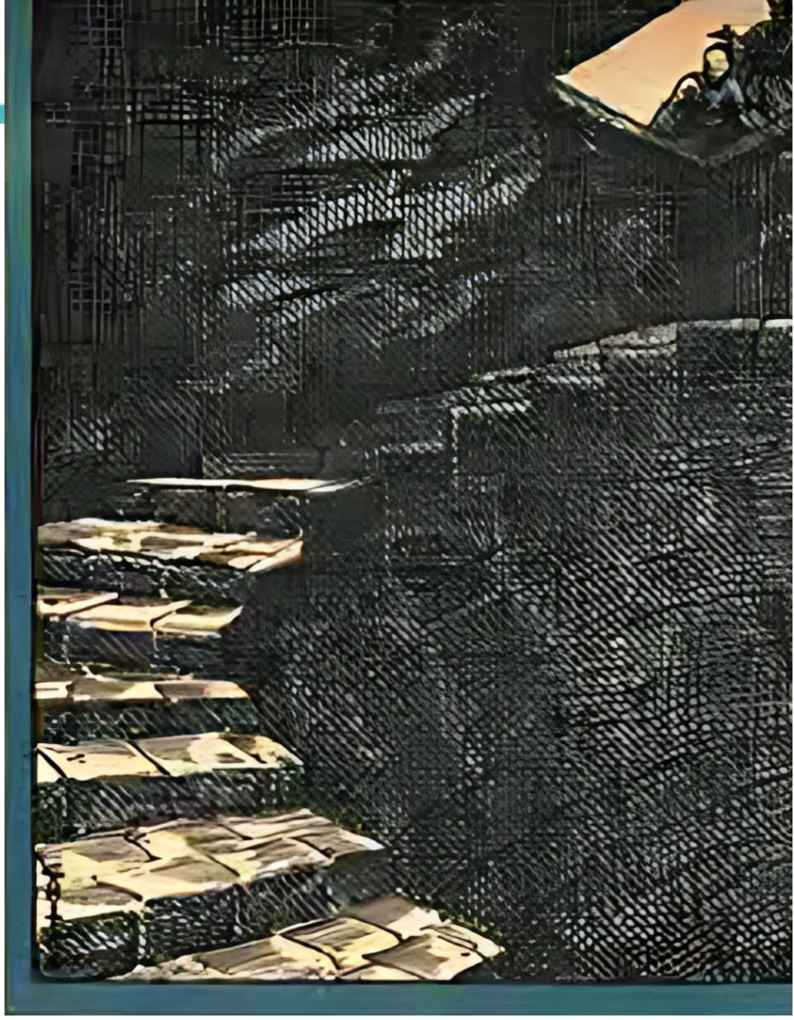
बताओ। जो तुम कहोगे, वही में करूँगा।" उसने कहा।

जादूगर ने अलादीन को पास बुलाकर उससे पूछा-"बेटा! तुम मेरे लिए अपने लड़के से भी अधिक हो। तेरे सिवाय इस संसार में मेरा और कोई नहीं है। तू ही मेरा सब कुछ है। तुझे देखने के लिए, धनवान बनवाने के लिए मैं इतनी दूर आया हूँ। देखो, उस पत्थर में लगे ताम्बे के छल्ले को पकड़कर पत्थर उठाना। वह ऊपर आ जायेगा।" जादूगर ने कहा।

"क्या चाचा, उतना बड़ा पत्थर में अकेले उठा सकूँगा! मुझ में उतनी ताकत नहीं है, तुम भी कुछ मदद करो।" अलादीन ने कहा।

"यह काम तुझे अकेले ही करना होगा। मेरा हाथ लगा नहीं कि हमारी सारी मेहनत फिजूल जायेगी। कहा तो था कि तुम ही उस पत्थर को उठा सकोगे और कोई नहीं। पत्थर उठाते समय, अपना नाम, अपने पिता और माँ का नाम लेना।" जादूगर ने कहा।

अलादीन ने अपनी सारी ताकत लगाकर, जादूगर के कहे अनुसार पत्थर उठा दिया।

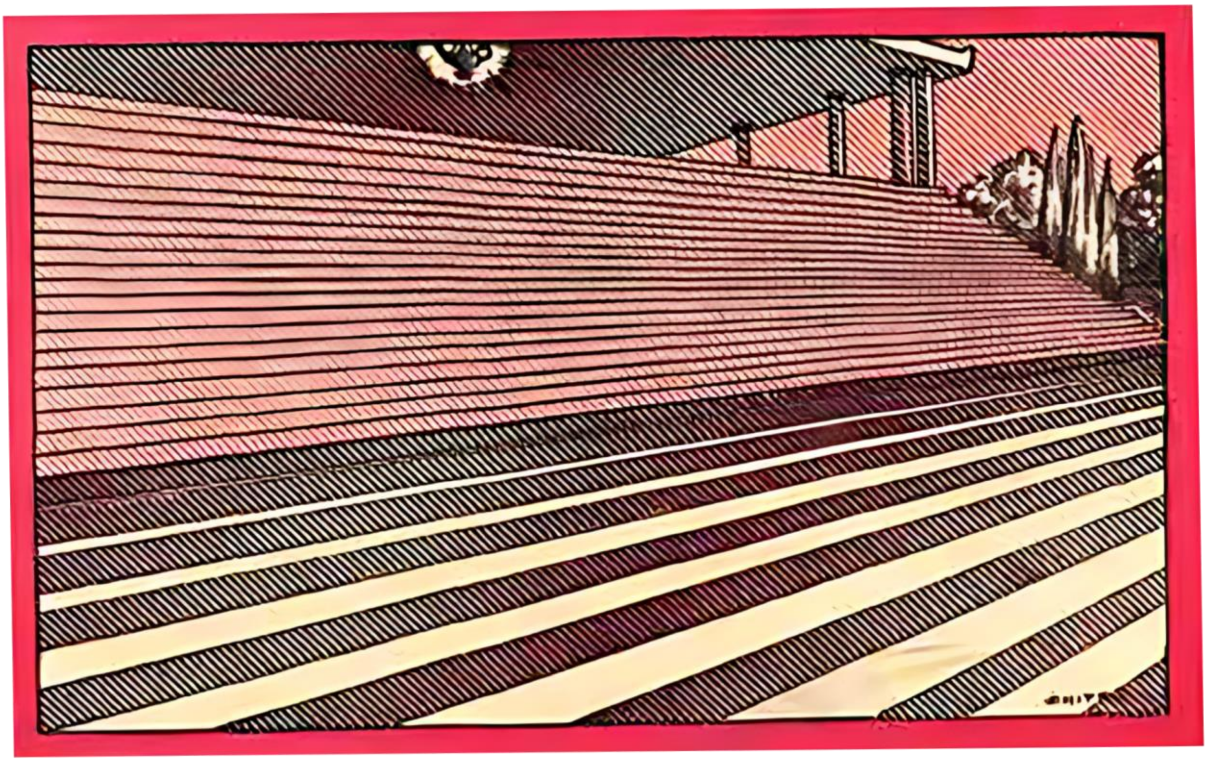


उसे वह अधिक भारी न लगा। पत्थर उठाते ही - बारह सीढ़ियाँ थीं। उसके बाद एक दरवाज़ा था।

तब जादूगर ने यों कहा- "अलादीन, जो मैं कह रहा हूँ उसे बड़ी सावधानी से सुनो। जो मैं कहूँ ठीक वैसा ही करो। भूलकर भी थोड़ी-सी गल्ती न करना। सीढ़ियाँ उतरकर नीचे गुफा में जाओ। वहाँ एक बहुत बड़ा कमरा होगा। उसके चार भाग होंगे। उन सब में सोना चान्दी भरा हुआ होगा। तुम वहाँ क्षण भी न रुकना। न वहाँ की चीज़े छूना, न दीवारें

ही। यह भी ख्याल रहे कि तुम्हारे कपड़े तक किसी चीज़ को न छुयें। अगर कोई चीज़ छुयी तो तुम भी काले पत्थर हो जाओगे। खबरदार, कमरे के एक सिरे पर एक दरवाज़ा होगा। जैसे तूने पत्थर उठाते समय, अपना, अपने पिता का, अपनी माँ का नाम लिया था, वैसे वहाँ भी लेकर दरवाजा खोलना। उसके बाद, अच्छे फलोंवाला एक बाग तुझे दिखाई देगा। उस बाग में पचास गज जाने के बाद तुझे तीस सीढ़ियाँ दिखाई देंगी। उन पर चढ़ जाने से एक बड़ा मकान दिखाई देगा। उस मकान के एक सिरे पर एक लालटेन लटकी हुई होगी। उसको उतारो। उसका तेल बाहर फेंक दो। फिर उसे अपने कुर्ते में छुपा लो। उसमें मामूली तेल नहीं है। इसलिए तुम्हारे डरने की ज़रूरत नहीं कि कपड़े बिगड़ जायेंगे। लालटेन को लेकर जब वापिस चलो तो बाग में ठहरना, और जितना फल तुम चाहो तोड़ लेना। समझे।"

जादूगर ने यह सब बताने के बाद, अपने हाथ की एक अंगूठी निकालकर अलादीन को पहनाते हुए कहा- "बेटा,



यह अंगूठी, तुम्हारी सब विपत्तियों में रक्षा करेगी। पर तुम वही करना जो मैंने कहा है। डरना मत! हिम्मत से काम लेना। थोड़ी देर में ही तुम संसार में सबसे अधिक धनी हो जाओगे।"

अलादीन गढ़े में कूदा। सीढ़ियाँ उतरकर गुफा में घुसा। जैसे जादूगर ने कहा था एक बड़ा कमरा चार भागों में बँटा हुआ था। और हर कमरे में सोना था। वहाँ उसने किसी चीज़ को न छुआ। कमरा पार करके बाग में गया। फिर सीढ़ियाँ पार करके मकान में पहुँचा।

वहाँ लटके हुए लालटेन को उसने उतारा। उसका तेल फेंक दिया। लालटेन को कुर्ते में छुपा लिया। फिर बाग में आकर उसने पेड़ों को देखा।

पेड़ों पर रङ्ग-बिरङ्गे फल थे। पर चूँकि अलादीन नादान था, इसलिए वह यह न जान सका कि वे मामूली फल न थे, परन्तु हीरे मोती थे। कीमती हीरे पन्ने, मोती, और जाने क्या क्या, उन पेड़ों की टहनियों पर लगे हुए थे। वैसे हीरे मोती संसार में किसी राजा के पास भी न थे। उनको देखकर अलादीन ने सोचा कि वे रङ्ग-



बिरङ्गे काँच के टुकड़े थे। कीमत भले ही न जानता हो, वह उनकी रोशनी देखकर बड़ा प्रभावित हुआ। इसलिए उन्हें तोड़कर उसने जेब भर लीं। जितने हीरे ढो सकता था, उसने ले लिये। गुफा से बाहर निकल कर, सीढ़ियाँ पार करके गढ़े में पहुँचा। गढ़े से वह ऊपर न चढ़ सका- -क्योंकि उसकी जेब मोती हीरों से भरी पड़ी थीं।

"चाचा, हाथ पकड़कर मुझे ऊपर उठाओ।" अलादीन चिल्लाया।

"शायद लालटेन भारी हो। वह पहले मुझे दे दो।" जादूगर ने कहा।

"वह अब नहीं दी जा सकती। पहले मुझे ऊपर खींचो, तब दूँगा।" अलादीन ने कहा।

जादूगर तो लालटेन ही चाहता था। और जब वह हाथ में न आई तो वह झुञ्झलाया। "पहले लालटेन दो।" उसने फटकारा। पर अलादीन, क्योंकि उसने जेबें पूरी तरह भर ली थीं, इसलिए कुर्ते में से वह लालटेन निकालकर भी न दे सका।

जादूगर यह सोचकर नाराज हुआ कि अलादीन वह लालटेन अपने पास ही रखना चाहता था। "अरे दुष्ट, अगर वह लालटेन तूने न दी तो देख तेरी क्या गत बनाता हूँ।" तिलमिलाता वह आग के पास गया। कुछ मन्त्र पढ़कर उसने उसमें कोई चूर्ण डाला। तुरन्त सङ्गमरमर का पत्थर अपनी जगह नीचे गिर गया। उस पर भूमि भी पहले की तरह आ गई। अलादीन उस गुफा में अकेला फँस गया। (अभी और है)





चुगलखोर की गति

जब खरगोश कछुए से हार गया तो उसकी अच्छी मिट्टी पलीत हुई। खरगोश कई दिनों तक सोचता रहा कि फिर कैसे खोई हुई प्रतिष्ठा पाई जाये।

वह अकेला बैठा इसी उधेड़बुन में था कि उसे एक तरतीब सूझी। खरगोश झट खड़ा हो गया। फिर एक बार लोमड़ी को चकमा देकर खोई कीर्ति पाऊँगा।" वह जोर से चिल्लाया।

पास के एक पेड़ की टहनी पर बैठी एक चुगलखोर चिड़िया खरगोश को बहुत देर से देख रही थी। उसने उसकी ये बातें भी सुनी। "लोमड़ी से कहूँगी, लोमड़ी से कहूँगी।" कहती कहती, चिड़िया उड़कर चली गई।

खरगोश हैरान था। परेशान। क्या किया जाये, उसे समझ में न आया। यह सोचकर कि लोमड़ी की नजर में न आना ही अच्छा है, वह सीधे अपने घर चला गया।

खरगोश अभी थोड़ी दूर गया था कि उसे सामने से लोमड़ी आती दिखाई दी। तुरन्त खरगोश को कोई चाल सूझी। अभी लोमड़ी कुछ दूर ही थी कि वह कहने लगा-"क्यों भाई लोमड़ी! मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? सुना है कि तुम कहते फिर रहे हो कि तुम मेरा और मेरे लोगों का सत्यानाश कर दोगे। हम दोनों की दोस्ती भला कब टूटी है?"

लोमड़ी को बड़ा गुस्सा आया। उसने पूछा-"यह सब तुम से किसने कहा है?"

"इसमें क्या रखा है कि किसने बताया है। चिड़िया ने बताया था। कहना होगा

कि मुझे बड़ा गुस्सा आया। और मैंने गुस्से में कुछ का कुछ बक दिया। गनीमत कि तुम वहाँ न थे। नहीं तो तुम्हें बड़ा दुःख होता।" खरगोश ने कहा।

"देख, मैं उस चिड़िया कि खबर लेता हूँ।" कहती कहती लोमड़ी आगे बढ़ी। थोड़ी दूर जाने के बाद, झाड़ी में से चिड़िया का पुकारना सुनाई दिया, "लोमड़ी भाई? लोमड़ी भाई! कहाँ जा रहे हो?" लोमड़ी ने उसकी न सुनी और आगे चलती गई।

"लोमड़ी भाई! एक बात तो सुनते जाओ।" चिड़िया ने फिर कहा।

लोमड़ी ने तब भी न सुना। थोड़ी दूर जाकर वह इस तरह लेट गई जैसे सो रही हो। चिड़िया पास आकर फुदकने लगी।

"लोमड़ी भाई, तुमसे एक बात कहनी है।"

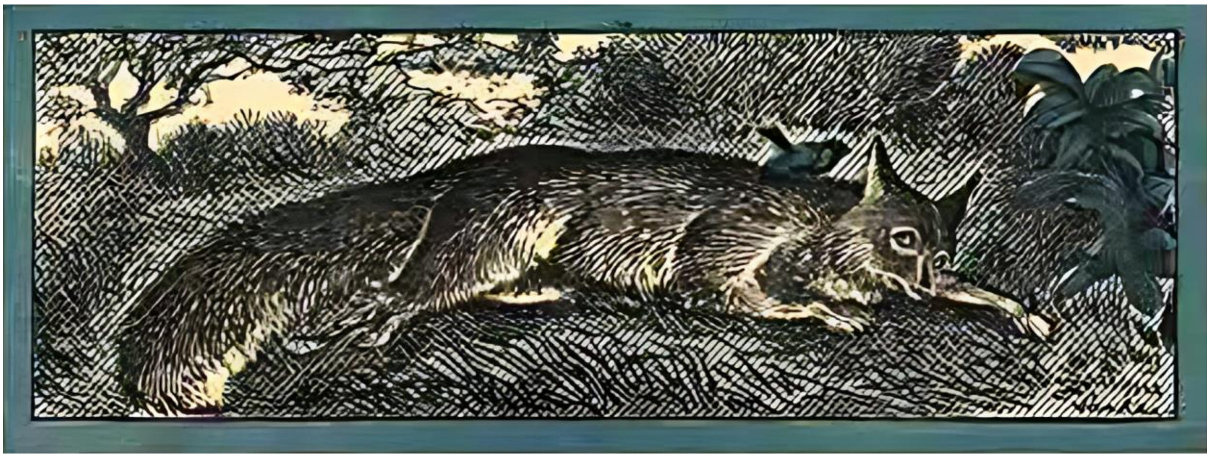
"मुझे कुछ नहीं सुनाई दे रहा है। पास आकर बताओ।" लोमड़ी ने कहा। चिड़िया उड़कर, लोमड़ी की पूँछ पर पंख फड़फड़ाने लगी।

"और थोड़ा पास आओ।" लोमड़ी ने कहा। चिड़िया ने लोमड़ी की पीठ पर आकर कहा-"यह नहीं लोमड़ी भाई....."

"और पास आओ।" लोमड़ी ने कहा। चिड़िया ने लोमड़ी के पेट पर जाकर कहा-"देख लोमड़ी भाई...."

"देख! मुझे कानों से नहीं सुनाई पड़ता है। मेरे मुँह पर आकर, कान में जोर से कह।" लोमड़ी ने कहा।

चिड़िया उसके मुँह पर गई। तब झट लोमड़ी ने मुँह खोला और वह चिड़िया को निगल गया। और अपने रास्ते पर चला गया।





[४]

[भाललोचन के चुङ्गल से निकलकर, रूपधर और उसके सैनिक नौका द्वीप में पहुँचे। उस द्वीप के राजा चित्राश्व से उनको बहुत मदद मिली। उसने सब वायुओं को एक थैली में बाँधकर दिया। रूपधर की नौकायें स्वदेश पहुँचने को ही थी कि अन्तिम क्षण में सैनिकों ने थैली खोल दी। उन वायुओं के प्रभाव से नौकायें ध्रुव को ओर वह गयीं। वहाँ के राक्षसों ने रूपधर के सैनिकों और नौकओं को नष्ट कर दिया। केवल रूपधर की नौका ही उनके हाथों से बचकर निकल सकी।।]

रूपधर ने अपने बचे-खुचे सैनिकों के साथ फिर वापिसी यात्रा शुरू की। मौत के मुँह से निकला था, इसलिये वह बहुत खुश भी था। पर साथ साथ दुःखी भी क्योंकि उसकी सब नौकायें नष्ट कर दी गई थीं और उसके सारे सैनिक मार दिये गये थे।

थोड़े दिनों बाद, रूपधर की नौका एक द्वीप में पहुँची। उस द्वीप में सुकेशिनी नाम की एक अप्सरा रहा करती थी।



उसके केश बहुत सुन्दर थे। यह सूर्य को, वरुण राजा की लड़की से पैदा हुई थी। वह मनुष्यों की भाषा बोलती थी, पर उसका स्वभाव उनका उपकार करने का न था।

रूपधर को इसके बारे में कुछ न मालूम था। उसने अपनी नौका को ऐसी जगह किनारे बाँध दिया, जो बन्दरगाह-सा था। दो रात और दो दिन उसने वहाँ काटे। दोनों दिन ग्रीकों ने निराशा और निरुत्साह में बिताये। उन्हें कुछ भी नहीं सूझा कि क्या किया जाये।

तीसरे दिन जब पूर्व में सूर्य उदय हो रहा था तो रूपधर अपनी तलवार और भाला लेकर एक ऊँची जगह पर गया। वहाँ से उसने चारों ओर देखा। उसे कोई न दिखाई दिया। पर दूर पेड़ों की झुरमुट में सुकेशिनी के घर से धुआँ ऊपर उठता दिखाई दिया। पहले पहले रूपधर ने जाकर जानना चाहा कि उन पेड़ों के बीच में कौन रह रहा था। पर बाद में उसने सोचा कि नौका के पास जाकर भोजन करने के बाद किसी सैनिक को ही इस काम पर भेजना अच्छा होगा।

परन्तु खाने के लिए भी कुछ न था। वह यह सोचता हुआ अपनी नौका के पास जा रहा था कि मानों भगवान ने भेजा हो, उसे रास्ते में एक हरिण दिखाई दिया। उसके सीङ्ग बड़े लम्बे थे। तब बहुत गरमी हो रही थी। पास वाले नाले में हरिण प्यास बुझाने जा रहा था।

रूपधर ने उसके पास जाकर उसे भाले से मारा। भाले की चोट से वह नीचे गिर गया और छटपटाकर मर गया। रूपधर ने कुछ बेलें इकट्ठी की। उनकी रस्सी बनाकर, उससे हरिण को गले में

बाँधकर, हरिण को पीठ पर डालकर झुका झुका वह नौका के पास धीमे धीमे गया। ऐसा इसलिये करना पड़ा क्यों कि हरिण बहुत भारी था।

उसने अपना शिकार नौका के पास डाल दिया। और अपने सैनिकों को जोश दिलाने के लिए वह यों कहने लगा:-"दोस्तो! हम इतने में मरनेवाले नहीं हैं। हमारे लिये यम को अभी बहुत दिन प्रतीक्षा करनी होगी। जब तक आहार व पेय हैं, हमें खाना पीना छोड़ने की ज़रूरत नहीं। याद रखना, भूख से तड़प कर मरने की हमारी नौबत नहीं आई है।"

यह सुनते ही ग्रीक सैनिकों में उत्साह सा आ गया। उन्होंने अपने मुँह पर ओढ़े हुये कपड़े हटाये। खड़े होकर उन्होंने वह हरिण देखा, जो रूपधर मार कर लाया था। हाथ पैर धोकर वे हरिण के पकाने की तैयारी करने लगे। शाम तक वे खाते पीते रहे। उस रात को भी वे किनारे पर ही सोये।



अगले दिन सवेरे रूपधर ने अपने सैनिकों को बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा-"हमारे लिए यह देश नया है। हम यहाँ यह भी नहीं जानते कि किस तरफ पूर्व है और किस तरफ पश्चिम। इस हालत में, हमें अब क्या करना चाहिये, मुझे तो कुछ सूझ नहीं रहा है। पर हाथ पर हाथ रखकर बैठ भी नहीं सकते हैं। कुछ न कुछ तो करना ही होगा। मैंने अभी पासवाले टीले से चारों ओर देखा। यह एक द्वीप है। जहाँ तक नज़र जाती है, वहीं तक इसका कोई दूसरा छोर नहीं दिखाई देता। द्वीप में खास बड़े पहाड़ पर्वत भी नहीं हैं। द्वीप के बीच में एक ऐसी जगह



है, जहाँ बहुत से पेड़ पौधे हैं। न मालूम वहाँ कौन हैं क्योंकि मैंने वहाँ से धुँआ उड़ता देखा था।

यह सुनते ही घर के सैनिकों का उत्साह ठण्डा पड़ गया क्योंकि इन परिस्थितियों में वे एक बार भाललोचनों के हाथ में पड़ गये थे। और फिर एक बार नरभक्षक राक्षसों के चुङ्गल में फँसे थे। वे अपने दुःख को काबू में न रख सके और रोने लगे।

फिर रूपधर ने अपने सैनिकों के दो गुट बनाये। एक गुट का तो वह स्वयं सरदार बना। और दुसरे गुट का उसने साहसी मायावी को सरदार बनाया। वहाँ कौन जाये, यह जानने के लिए दोनों गुटों ने मुहर उछाली। मायावी का गुट हारा। उसे जाना पड़ा। तुरत मायाबी अपने बाईस सैनिकों को लेकर कोसता कुढ़ता उस तरफ निकला।

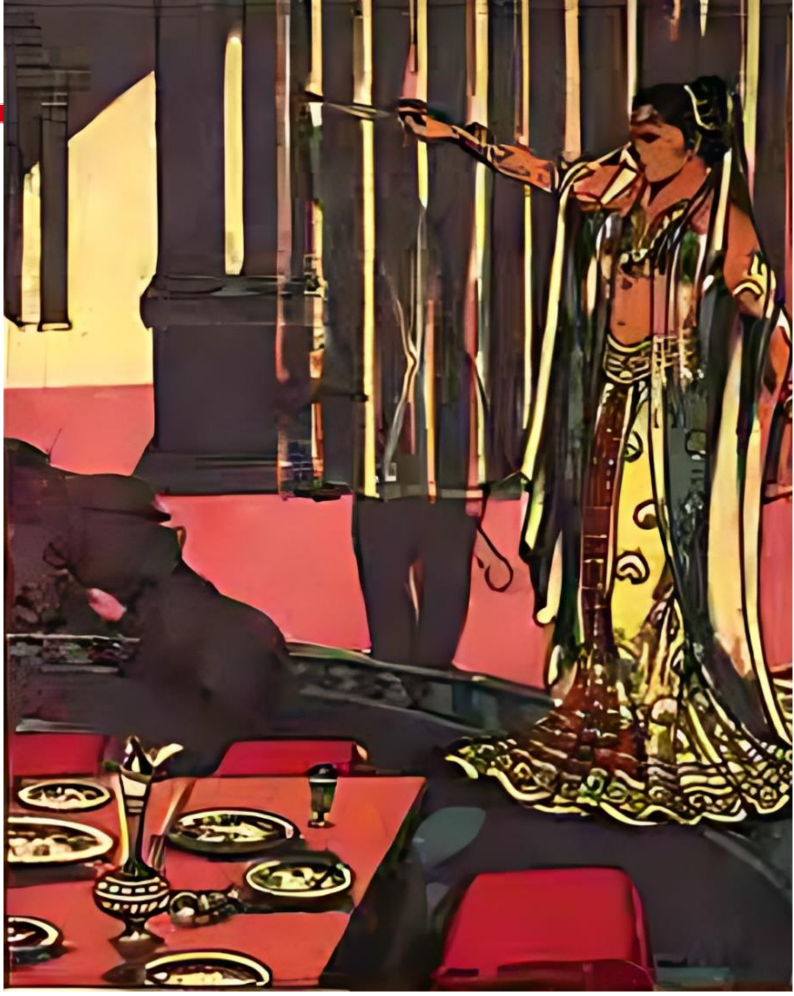
थोड़ी दूर जाने के बाद, उसे एक नीची जगह पर सुकेशिनी का घर दिखाई दिया। घर अच्छे पत्थरों से बनाया गया था। उसके चारों ओर बड़ा अहाता था। घर के चारों ओर भेड़िये, शेर वगैरह जङ्गली जन्तु थे। ये वस्तुतः जानवर न थे। मनुष्य ही थे। सुकेशिनी ने इधर उधर की चीजें खिलाकर मनुष्यों को जानवर बना दिया था। इसलिये उनका मायावी के आदमियों पर हमला करना तो अलग, कुत्तों की तरह दुम हिलाते हिलाते वे उनके पास आये। ग्रीक क्योंकि उन्हें जानते न थे, इसलिये उन्हें देखकर वे डर गये।

घर के पास न जाकर बाहर के फाटक के पास खड़े होकर ही उन्होंने इधर उधर देखा भाला। अन्दर करघे पर सुकेशिनी कुछ बुनती गा रही थी। उसका गाना उन्हें

सुनाई दिया। उनमें से एक ने कहा- "मित्रो अन्दर कोई स्त्री बहुत ही मधुर सङ्गीत गा रही है। या तो वह कोई स्त्री है, नहीं तो कोई अप्सरा है। आओ, उससे बातचीत करें। हिचकने की क्या बात है?"

तुरन्त सबने गला फाड़कर अन्दर की स्त्री को बुलाया। सुकेशिनी बाहर गयी। आये हुए लोगों को देखकर उसने उनको अन्दर निमन्त्रित किया। परन्तु मायावी ने उसे देखते ही सोचा कि ज़रूर दाल में काला है। इसलिए वह बाहर ही खड़ा रहा।

जो जो उसके साथ गये थे उन सब को सुकेशिनी ने स्वादिष्ट खाने की चीजें व पेय दिये। परन्तु उन चीज़ों में उसने कुछ जड़ी बूटियों का रस भी मिला दिया था। ग्रीक उन चीज़ों को खाते ही दुनियाँ को भूल से गये। फिर उसने जादू के डण्डे से एक एक को छुआ, तुरन्त वे सब सूअर हो गये और चिल्लाने लगे। उनका कलेवर तो बदल गया था। पर उनका मन बिल्कुल न बदला था। सुकेशिनी ने उन सूअरों को एक सुअरों के बाड़े में हाँक दिया। वे उस कैदखाने में वही खाने लगे, जो सूअर खाते हैं।



सुकेशिनी के जादू से बचकर, मायावी नौका के पास गया। बहुत देर तक उसके मुख से बात ही न निकली। उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लगी हुई थी। रूपधर आदि के बहुत कुछ पूछने पर उसने जो कुछ गुज़रा था, कह सुनाया।

"आपकी आज्ञा के अनुसार हम उस तरफ़ गये। वहाँ ढलान पर एक सुन्दर पत्थर का मकान दिखाई दिया। अन्दर कोई स्त्री कुछ बुनती, गा रही थी। हमने उसे बुलाया। वह आकर सबको अन्दर बुला ले गई। मैं यह सोचकर कि वह



कुछ धोखा न दे, बाहर ही खड़ा रहा। फिर जो अन्दर गये उनका पता ही न लगा।"

रूपधर ने यह सुनते ही, अपनी बड़ी तलवार, चान्दी के मूठवाली, पीतल की तलवार, बाण उठाकर कहा- "मुझे रास्ता दिखाओ। मेरे साथ आओ।" मायावी उसके पैरों पर पड़कर कहने लगा-"मुझे वहाँ न बुलाइये। आपको लाख लाख सलाम। मैं यहीं रहूँगा। आप वापस न आयेंगे। मैं जानता हूँ। मैं अगर आपके साथ गया तो मेरी भी वही गति होगी। अगर आप चाहते हैं कि आप, मैं, और ये कुछ दिन जिन्दा रहें, तो उस मनहूस घर के पास मत जाइये। आइये, यहाँ से जायें।"

"अच्छा! मायावी! जैसी तुम्हारी मर्जी। तुम यहीं नौका के पास रहो। खाओ, पिओ। मैं जाऊँगा, जाकर रहूँगा।" रूपधर ने कहा।

वह ढलान तक पहुँचकर, सुकेशिनी के घर की ओर देख ही रहा था कि उस समय एक युवक ने उसके सामने आकर खड़े होकर कहा- "अरे, अफसोस, फिर आ रहे हो? जानते हो, वह मकान जो दिखाई दे रहा है, वह सुकेशिनी का है। तुम्हारे आदमी सब सूअर बना दिये गये हैं, और क़ैद में बन्द हैं। क्या तुम भी उनमें मिलना चाहते हो? फिर भी कोई बात नहीं। जैसा मैं कहूँ, वैसा करो। मैं तुझे एक बूटी देता हूँ। सुकेशिनी तुझे पेय में दवा मिलाकर देगी। इस बूटी के प्रभाव से उस पेय का तुम पर कोई असर न होगा। वह फिर तुम पर जादू का डँड़ा रखेगी। तुम तुरन्त तलवार निकालकर, ऐसा दिखाओ, जैसे तुम उसे मारना चाहते हो। वह डर जायेगी, और कहेगी कि तेरी पत्नी होकर

रहेगी। तू यह स्वीकार कर सकता है। परन्तु पहले ही उससे देवताओं के नाम पर शपथ करवाओ और वचन लो कि वह तुम्हारी कोई हानि न करेगी।" उस युवक ने जमीन से बूटी उखाड़कर उसे दी। उस बूटी की जड़ काली थी। परन्तु उनका फूल बिल्कुल सफेद था।

युवक के चले जाने के बाद रूपधर उधेड़बुन में फँसा। वह सोचता सोचता, सुकेशिनी के घर पहुँचा। उसने आवाज लगायी। तुरत सुकेशिनी ने आकर दरवाज़ा खोला। वह उसके साथ अन्दर गया। पर उसका दिल धड़-धड़ कर रहा था।

उसने उसे एक सुन्दर कुर्सी पर सादर बिठाया। अन्दर जाकर दवा मिली हुई पेयों को लाकर उसने उसके सामने रखा। रूपधर ने उन्हें पी लिया। पर उस बूटी के कारण उस पर कोई असर न हुआ। सुकेशिनी यह न जानती थी। उसने जादू का डण्डा दिखाते हुए कहा- "सूअरों के बाड़े में, जो तेरे सैनिक हैं, उनसे जा मिल।"

तुरन्त रूपधर तलवार निकालकर उसकी ओर लपका। वह भय से काँपने लगी।



उसके पैर पकड़कर कहने लगी- "तुम कौन हो? इस विशाल संसार के किस प्रान्त से आ रहे हो? तुम्हारा कौन-सा शहर है? तुम्हारे माँ-बाप कौन हैं? मेरे पेयों के बाद भी न बदलना मामूली आदमियों के बस में नहीं है। तुम ज़रूर रूपघर हो। देवताओं ने मुझे पहले ही बता रखा है कि रूपधर मुझे देखने आयेगा। हम दोनों का वैर अच्छा नहीं। उस तलवार को रख दो। आओ, मुझसे विवाह करो। हम दोनों आराम से रहें।"

"तूने मेरे सैनिकों को सूअर बनाकर कैद कर लिया है, तब तेरी मेरी कैसे पटेगी? मुझे भी सूअर बनाना चाहा और जब न बना तो शादी करने के लिए कहती हो। अगर तुम यह शपथ करो कि तुम मेरा कोई नुकसान न करोगे तब मैं तुमसे शादी करूँगा।" रूपधर ने कहा।

सुकेशिनी ने शपथ ली। फिर उसकी दासियों ने रूपधर को नहलाया-धुलाया। उसे और अपनी मालकिन को भोजन परोसा। परन्तु रूपधर ने वह भोजन न खाया।

"क्यों सन्देह कर रहे हो? शायद सोच रहे हो कि मैं फिर धोखा दूँगी। शपथ की थी न कि मैं कुछ नहीं बिगाड़ूँगी।" सुकेशिनी ने कहा।

"जब मेरे सैनिक सूअर के रूप में हैं, तब मैं यह खाना कैसे खा सकता हूँ? जब तक उनको मामूली मनुष्य बनाकर मेरे सामने हाज़िर नहीं करते, तब तक मुझे शान्ति न मिलेगी।" रूपधर ने कहा।

सुकेशिनी अपने जादू के डण्डे को लेकर उठी और रूपधर के सैनिकों को मामूली आदमी बनाकर अपने साथ ले आई।

रूपधर को देखते ही उनके सन्तोष की सीमा न रही। उनमें से कई आनन्द के कारण आँसू बहाने लगे।

सुकेशिनी ने रूपघर के पास आकर कहा-"जैसा मैं कहूँ, वैसा करो। समुद्र के किनारे जाओ। अपनी नौका को किनारे पर लगाओ। अपना समान-असबाब एक गुफा में रखो। फिर अपने बाकी सैनिकों को लेकर यहाँ चले आओ।" रूपधर उसके लिए मान गया।

(अभी और है)





खोया हुआ समय

किसी देश का कोई राजा था। वह एक दिन शिकार खेलकर अपने नौकर-चाकरों के साथ जा रहा था। उसे रास्ते में एक बुढ़िया अपने लड़के को डाँटती ड़पटती नजर आई।

राजा ने अपना घोड़ा थामकर पूछा- "दादी, इस लड़के को क्यों यो डाँट रही हो?"

"जब कोख फलनी ही थी तो क्या ऐसा बाबला लड़का पैदा होना था! वह कुछ भी समझता-भालता नहीं, कुछ कहो और कुछ करता है। दिक आई हुई हूँ।" बुढ़िया ने कहा।

राजा ने अपने नौकरों से थोड़ी देर बात की फिर उसने बुढ़िया से कहा- "मैं तेरे लड़के को सुधार कर अपनी नौकरी में रखूँगा, क्या तुम उसे मेरे साथ भेज सकोगी?"

"और भला मैं क्या चाहूँगी? ले जाओ।" बुढ़िया ने कहा।

उस बुढ़िया के लड़के का नाम बाबा था। उसे हमेशा सताकर अपना मनोरञ्जन करने के लिए ही राजा और उसके नौकरों ने यह चाल चली थी।

बाबा जब से आया था, तब से राजा घर में कभी ऐसा वक्त न आया, जब वे खुश न हों क्योंकि बाबा को तङ्ग करके सब अपना मन बहलाव करते। "अरे, सफेद कौवे के पंख चाहिए। जा, फौरन ला।" या "अरे, हरे मन्दार का फूल ला।" इस तरह के बेमतलब के कामों पर उसे इधर उधर दौड़ाते।

गायत्री देवी



बाबा को न मालूम होता कि वे उसे चिढ़ा रहे थे। वह काम करने भागता, दौड़ धूप करता और खाली हाथ वापिस आता। उसको देखकर वे हँसते हँसते लोटपोट हो जाते।

न हँसनेवाली सिर्फ़ दीदी थी। वह राजा के रसोई घर में काम किया करती थी। उम्र में वह बाबा से कुछ छोटी थी। बहुत सीधी-सादी थी और खुबसूरत भी।

वह उसकी परवाह करती। उसे खूब खिलाती पिलाती। "तुझे कुछ नहीं आता जाता। जो कुछ वे कहते हैं, तुम करने के लिए भागते हो। तुझे तङ्ग करने के लिए वे काम बताते है। जब कभी, जो कोई तुझे बाहर काम पर भेजे, तो पहले मुझसे कहते जाना।" उसने बाबा को सलाह दी।

इसके बाद, जब कोई बाबा को कोई काम करने के लिए कहता तो वह दीदी की सलाह लिया करता और जो वह कहती, वह करता।

साधारणतया, राजा सूर्योदय के समय उठा करता। एक दिन वह एक घण्टा देर से उठा। अपने कमरे से बाहर आकर उसके लिए प्रतीक्षा करते हुए लोगों से उसने कहा-"आज, लगता है मेरा एक घण्टा समय चला गया है।"

तुरन्त बाबा ने पूछा-"तो क्या मैं खोजकर लाऊँ?" सब ठहाका मारकर हँसे। राजा न हँसा। उसने कहा-"अच्छा, जो घण्टा भर समय चला गया है, उसे पकड़ ला।"

बाबा को देखकर दीदी को तरस आई। उसने कहा-"क्या कभी वह समय जो चला जाता है वापिस आता है? शाम

को राजा के पास जाकर कहना कि कहीं दिखाई नहीं दिया है।"

बाबा ने जिद पकड़ते हुए कहा-"जो चीज़ खोई जाती है वह ज़रूर मिलती है। राजा के कहने से पहले ही मैंने कह दिया था कि मैं खोज कर लाऊँगा। जाकर लाना ही होगा।"

पागल से बहस करने से क्या फायदा? इसलिए दीदी ने एक लम्बी साँस छोड़ी और बाबा को भोजन परोसा।

बाबा ने जल्दी जल्दी खाना खाया। और राजा के पास जाकर कहा-"मैं जाने के लिए तैयार हूँ।"

राजा ने किसी दरबारी के एक लङ्ग्ड़े घोड़े को उसे दिया। किसी और की जङ्गवाली तलवार दी। तलवार लेकर लँगड़े घोड़े पर सवार होकर जब बाबा जा रहा था तो राजा और दरबारियों ने अट्टहास किया।

बहुत दूर जाने के बाद सामने से एक बूढ़ा आता हुआ दिखाई दिया।

"बाबू, मैं एक घण्टे समय की खोज में निकला हूँ, जो चला गया है। क्या



तुम्हें वह कहीं दिखाई दिया?" बाबा ने पूछा।

बूढ़े ने कहा-"तेरे एक घण्टे समय की कीमत भी क्या है? मेरी प्रतिष्ठा चली गयी है। मैं उसकी खोज में देश देश दर दर भटक रहा हूँ। क्या तुझे मेरी प्रतिष्ठा दिखाई दी थी?"

बाबा ने कहा कि उसे वह न दिखाई दी थी। वह आगे बढ़ गया। थोड़ी दूर जाने के बाद उसे एक हट्टा कट्टा तमतमाता व्यक्ति तेज़ी से आता दिखाई दिया। उसकी आँखें अङ्गारे हो रही थीं।

"बाबू, क्या आपको कहीं खोया हुआ समय दिखाई दिया है?" बाबा ने उससे सविनय पूछा।

उस व्यक्ति ने गरमाते हुए कहा- "मुझे तेरे समय से क्या वास्ता? मैं अपनी सहनशक्ति खो बैठा हूँ। बहुत खोजा, कहीं न मिली। क्या तुम्हें कहीं दिखाई दी?"

"नहीं तो!" बाबा ने डरते हुए कहा।

"यही बात थी तो तुमने मुझे क्यों रोका?" वह व्यक्ति, अपने डण्डे से बाबा को खूब पीटकर चला गया।

यह देख बाबा का लङ्गड़ा घोड़ा बिदक उठा। और उसने दौड़ लगाई। वह थोड़ी देर बाद समुद्र के किनारे वाले जीजी नगर में पहुँचा।

बाबा ने सीधे राजा के पास जाकर कहा-"मैं उस समय की खोज कर रहा हूँ, जो हमारे राजा खो बैठे हैं। क्या आप मेरी मदद कर सकेंगे?"

राजा की आखों में तरी आ गई। उसने कहा-"भाई! मैं तुम्हारी क्या मदद कर सकता हूँ। पन्द्रह वर्ष पहले मेरी लड़की



कहीं चली गई। बहुत ढूँढा पर वह कहीं न मिली। जब तुम अपने समय को खोजो तो जरा उसको भी खोजना।"

"बहुत अच्छा।" कहकर, बाबा वहाँ से आगे चला गया।

समुद्र के किनारे बाबा को एक नाव दिखाई दी। उसमें मल्लाह माल चढ़ा रहे थे। बाबा ने उनके पास जाकर खोये हुए समय के बारे में पूछा।

"अगर वह कहीं मिलेगा तो समुद्र में ही मिलेगा। चाहते हो तो हमारी नाव पर चढ़कर चले चलो।" मल्लाहों ने कहा।

मल्लाह जान गये थे कि उस अनाड़ी से सब काम करवाये जा सकते थे।

बाबा को उनकी बात पर विश्वास हो गया। वह उनके साथ नौका पर चढ़कर निकल पड़ा। समुद्र में बड़ा तूफ़ान आया, और नाव किसी पहाड़ से टकरा कर चूर चूर हो गई। सिवाय बाबा के सब मर मरा गये। समुद्र की लहरें उसे एक विचित्र द्वीप में ले गई।

उस द्वीप में समय देवता रहा करता था। जहाँ कहीं बाबा उस द्वीप में जाता, सिवाय काले पत्थरों के ढेर के उसे कुछ





न दिखाई देता। उन ढ़ेरों के बीच वह रात भर घूमता रहा। सूर्योदय के समय उसने एक आश्चर्यजनक घटना देखी।

बाबा के सामने ही एक किला था। उसके देखते देखते उस किले के फाटक खोलकर एक सफेद दाढीवाला बूढ़ा निकला। उसके साथ सफेद कपड़े पहने एक नवयुवक घोड़े पर सवार होकर खड़ा था। उसके चारों ओर साठ लड़के ठीक उसकी तरह सफेद कपड़े पहने सफेद छोटे घोड़ों पर सवार होकर जाने के लिए तैयार थे।

बूढ़े के ईशारा करते ही, घुड़सवार बाण की गति से बाबा की बगल में से गुजरे। बाबा ने आगे बढ़कर बूढ़े के पास जाकर पूछा-"आप कौन हैं? और ये सब कौन हैं? यह कौन-सा देश है?"

"मैं समय देवता हूँ। यह मेरा निवास स्थल है। अब जो नवयुवक गया है वह प्रथम घण्टा है। उसके साथ गये हुए निमिष हैं।" वृद्ध ने कहा।

यह सुनते ही बाबा को वह काम भी याद आया, जिस पर वह निकला था। "हमारे राजा ने कहीं एक घण्टा समय खो दिया है। उसे ढूँढ लाने के लिए मुझे भेजा है। क्या आप मेरी मदद कर सकेंगे?" उसने समय देवता से पूछा।

"हाँ, यह तो मेरे हाथ में है। आओ, बेटा।" समय देवता ने कहा।

अन्दर एक बड़ा महल था। उस महल में घण्टे और निमिष थे। रात के घण्टों ने काले लिबास पहन रखे थे और दिन के घण्टों ने सफ़ेद कपड़े।

समय देवता समय के अनुसार घण्टे और निमिषों को भेजता रहता। यही यहाँ का कार्यक्रम था।

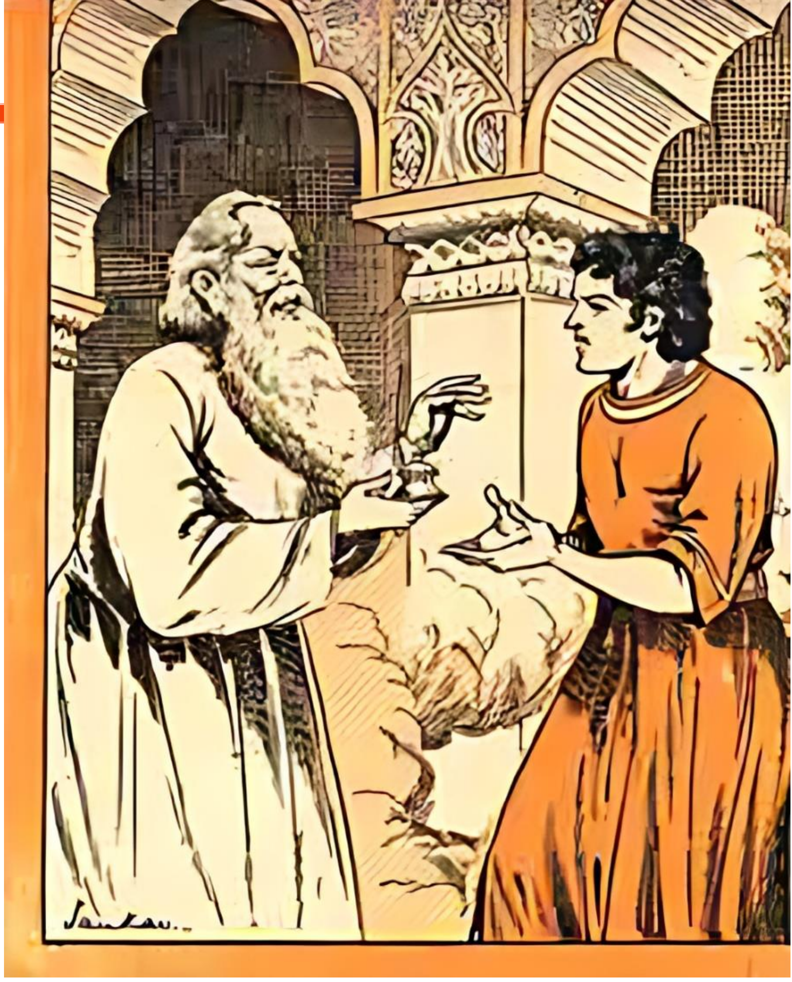
सबने बाबा के प्रति आदर भाव दिखाया। समय देवता की आज्ञा पर उन्होंने बाबा को ठीक कर दिया। वह अक्लमन्द हो गया। ऐसी कौन सी चीज़ है, जो समय न कर सकता हो।

बाबा वहाँ कुछ समय तक रहा। फिर उसने समय देवता से कहा- "महाराज! अब मुझे भेज दीजिये।"

समय देवता ने बाबा को एक छोटी-सी डिबिया देते हुये कहा-"वह घण्टा जो तुम्हारा राजा खो बैठा था, इसमें है। जब तक जरूरत न पड़े तब तक इस डिबिया का ढक्कन न खोलना।"

".. महाशय ! जब मैं आ रहा था, तो मुझे एक बूढ़ा मिला। उसने बताया कि वह अपनी प्रतिष्ठा खो बैठा था। उसको ढूँढ़ता ढूँढता वह देश देश में भटक रहा था, क्या आप बता सकेंगे कि उसकी प्रतिष्ठा क्या हुयी।" बाबा ने पूछा।

"उसे, उसके अड़ोस पड़ोस के लोग, टुकड़े टुकड़े करके ले गये हैं और उसे कहीं छिपा दिया है। उन टुकड़ों को लाकर जोड़ने के लिये कहो।" समय देवता ने कहा।



"एक हट्टे कट्टे आदमी ने अपनी सहन शक्ति खो दी है। वह कहाँ गई है, क्या आप बता सकेंगे?" बाबा ने पूछा।

"जहाँ तू उससे मिला था, उससे तूने बातचीत की थी, उसी जगह घास में, वह गिर गयी है। वह अमरूद जितनी बड़ी है। और सफ़ेद है।" समय देवता ने कहा।

"जीजी राजा की लड़की छुटपन में ही कहीं चली गई थी। उस लड़की का ठिकाना भी कृपया बताकर पुण्य कमाइये।" बाबा ने कहा।

"तुम उस लड़की को खूब जानते पहचानते हो। उसका नाम दीदी है। और वह तुम्हारे राजा के यहाँ काम कर रही है।" समय देवता ने कहा।

बाबा समय देवता को प्रणाम करके वापिसी यात्रा के लिये तैयार हुआ। ठीक उसी समय दुपहर का घण्टा और उसके निमिष निकल रहे थे, वे उसे साथ ले गये। उन्होने उसे रास्ते में छोड़ दिया। वह ऐसी जगह उतरा जहाँ उसे हट्टाकट्टा आदमी मिला था। पास ही, घास में उसको अमरूद के बराबर, समय देवता के कथनानुसार सहन शक्ति मिली। परन्तु वह हट्टाकट्टा आदमी कहीं न दिखाई दिया।

वहाँ से बाबा जीजी नगर गया और वहाँ के राजा से उसने कहा-"मैंने आपकी लड़की के बारे में मालूम कर लिया है। कुछ नौकर-चाकरों को लेकर आप मेरे साथ आइये।"

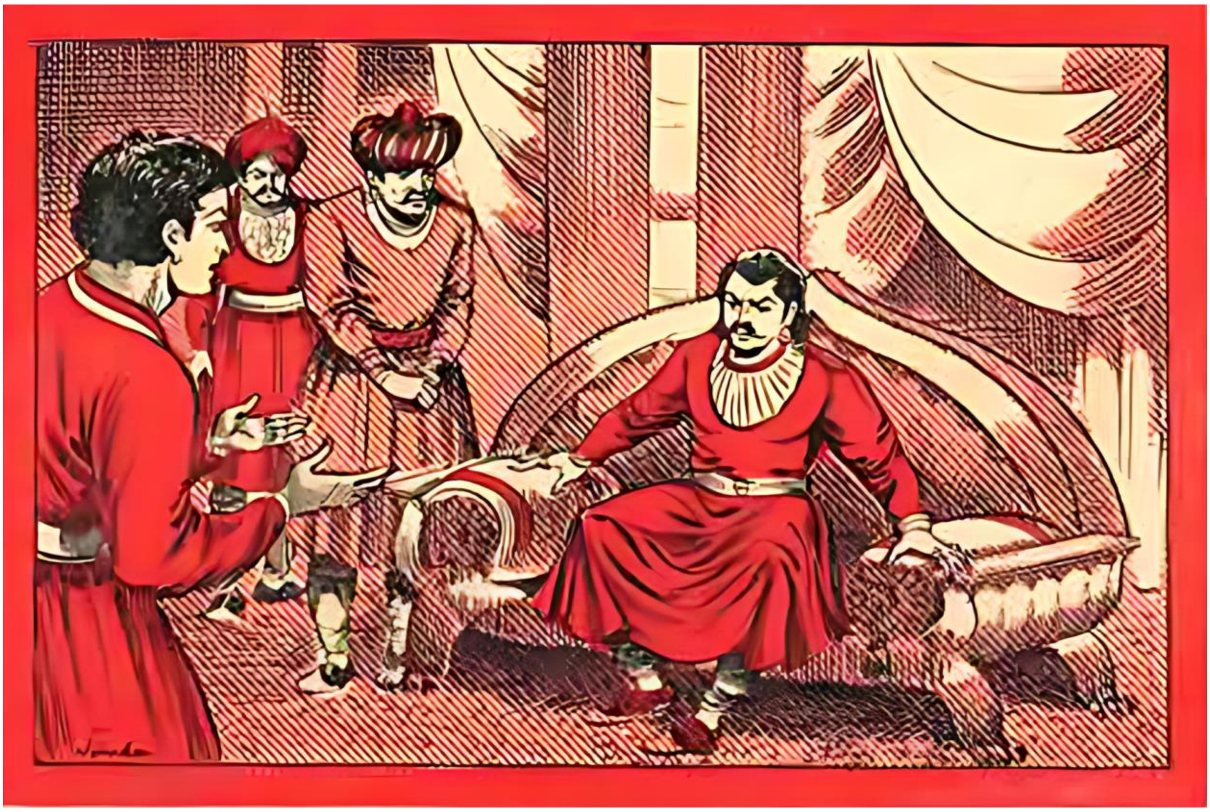
जीजी के राजा को बड़ी खुशी हुयी। उसने कई रथों की व्यवस्था की। बाबा को एक रथ में उसने अपने साथ बिठाया। नौकर-चाकरों को साथ लेकर निकल पडा। जब सब बाबा के शहर में



गये। शहर मातम मनाता सा लगा। लोग कानों में कुछ बातें कर रहे थे।

बाबा राजमहल में गया। उसने राजा से पूछा-"जहाँ देखो लोग दुखी खड़े हैं, क्या बात है?" राजा ने निश्वास छोड़ते हुये कहा-"क्या कहूँ? कल यहाँ एक राक्षस आया। उसने रसोई करनेवाली एक लड़की माँगी। राक्षसों की रसोई करने के लिये कौन मानेगा? कोई न माना। राक्षस को गुस्सा आया। उसने कहा कि अगर तुमने शाम तक रसोई करनेवाली को न भेजा तो सारा शहर नष्ट कर दूँगा। यह जानकर, दीदी ने राक्षस की नौकरी करना स्वीकार कर लिया, ताकि नगर की रक्षा हो सके। अभी अभी, सूर्यास्त होने से कुछ देर पहले ही वह यहाँ से चली गई।"

बाबा झट उठ खड़ा हुआ। उसने पश्चिम के आकाश की ओर देखकर कहा-"सूर्यास्त हुए अभी एक घण्टा नहीं हुआ है। इस घण्टे को पीछे करके दीदी को यहाँ लाने का प्रयत्न करता हू।" कहते हुए उसने डिबिया का ढक्कन खोल दिया। तुरन्त चौन्धियानेवाला प्रकाश हुआ। उसके बाद समय एक घण्टा पीछे हट गया।



पश्चिम की ओर सूर्य अस्त होनेवाला था। दीदी राक्षस के पास जाने को तैयार थी।

बाबा ने उसका हाथ पकड़कर कहा-"दीदी देखो, ये हैं तुम्हारे पिताजी- जीजी देश के राजा।

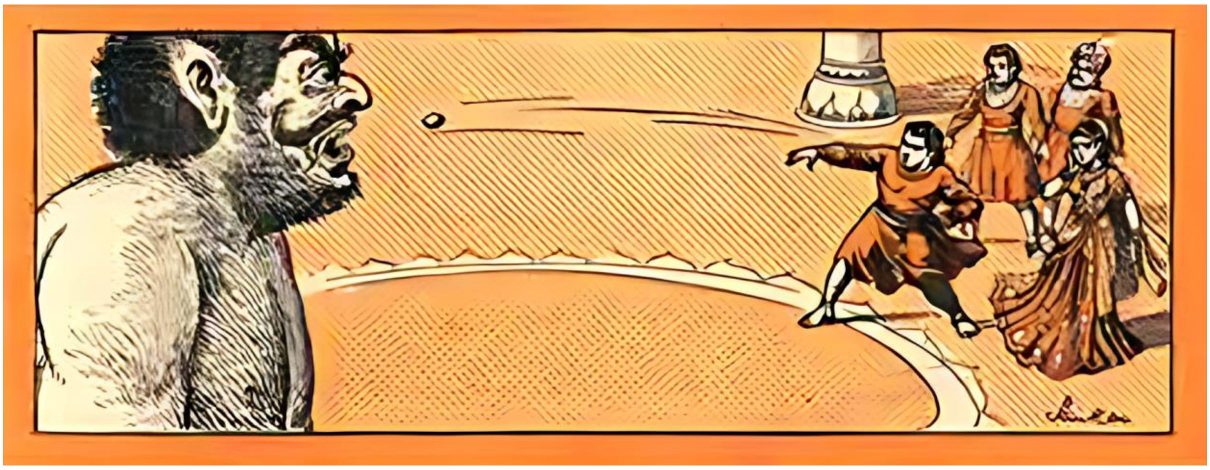
जीजी के राजा ने अपकी लड़की को गले लगा लिया। आनन्दाश्रु बहाये। सब दीदी के बारे में मालूम करने में मशगूल थे कि अन्धेरा हो गया।

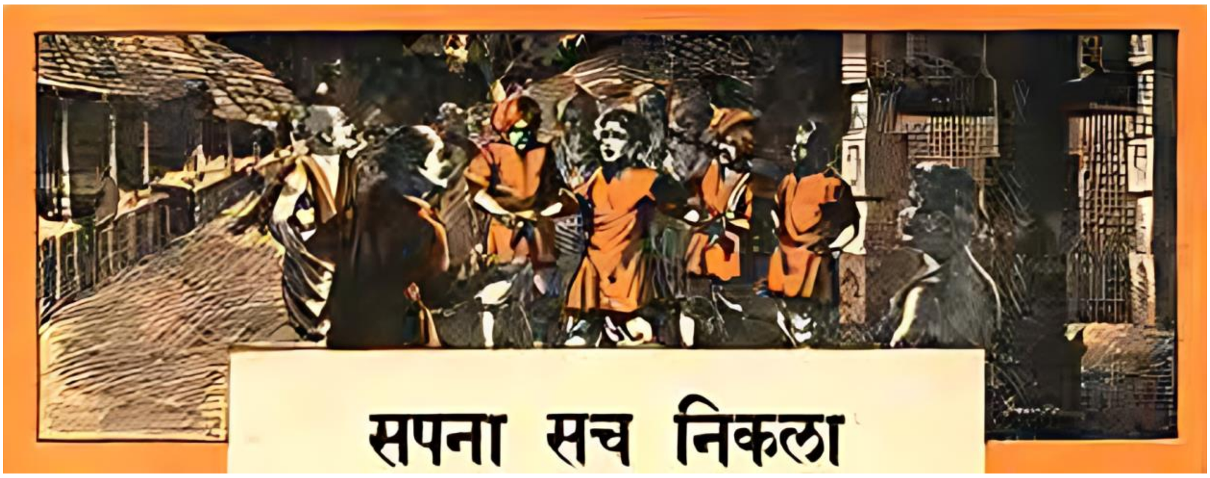
रसोई करने के लिए किसी को भेजा न गया था। इसलिए राक्षस गुस्से में उबलता-सा आया।

"उसकी खबर मैं लूँगा। आप लोग न घबराये।" कहता हुआ बाबा तलवार निकाल कर उसकी ओर लपका। राक्षस मुख खोलकर, हाथ फैलाकर, बाबा को पकड़ने के लिए आगे बढ़ा। उसको उसने पास आने दिया। जब वह पास आ गया तो बाबा ने अपने पास की सहन शक्ति को उसके खुले मुख में डाल दिया।

तुरन्त राक्षस में बड़ा परिवर्तन हुआ। उस सहन शक्ति को निगल कर बाबा को देखकर उसने अट्टहास करके कहा-"गुस्सा न करो, अच्छा जाता हूँ। नमस्ते।" सिर झुकाकर हाथ जोड़कर वह जिस रास्ते आया था उस रास्ते चला गया। जीजी के राजा ने बाबा से कहा-"बेटा! मेरे कोई लड़का नहीं है। तुमने मेरी लड़की मुझे दिलवायी है। हम तुम्हारा ऋण नहीं चुका पायेंगे। तुम हमारे देश आओ। हमारी लड़की से विवाह करके, हमारे बाद राज्य करो।"

बाबा मान गया। उसका और दीदी का बड़े वैभव के साथ विवाह हुआ।





इन्द्रप्रस्थ नगर में एक बड़ा रईस रहा करता था। उसने ऐश आराम में समय बिताया। फिर भाग्य ने साथ न दिया। उसकी सारी सम्पत्ति चली गई। जो कभी अमीर था गरीब हो गया।

जब वह इस हालत में था तो उसे सपना आया। सपने में महाविष्णु ने प्रत्यक्ष होकर कहा-"तुम तुरत पाटलीपुत्र जाओ। वहाँ तुम्हें पैसा मिलेगा। उसको पाकर तुम फिर अमीर हो जाओगे।"

सपने में, महाविष्णु की कही हुई बात पर उसको विश्वास हो गया। वह अकेला पाटलीपुत्र के लिए निकल पड़ा। कई दिनों की यात्रा के बाद वहाँ पहुँचा। यूँ तो पाटलीपुत्र उसके लिए नया था, तिस पर अन्धेरा हो गया था। कृष्ण पक्ष की रातें थीं। आकाश में चान्द भी न था। वह जैसे तैसे एक मन्दिर में पहुँचा। और मण्डप में सो गया। सारा नगर सो गया था। मन्दिर के पासवाले घर में चोर घुसे। घर का मालिक चोरों की आहट सुनकर, "चोर, चोर" जोर से चिल्लाने लगा। देखते देखते आस-पड़ोस के लोग यहाँ आ गये।

चोर दीवार पर से मन्दिर के आङ्गन में कूदे। मण्डप की बगल में से वे अन्धेरे में कहीं नौ दो ग्यारह हो गये। लोग ढूँढते ढूँढ़ते मन्दिर के आङ्गन में आये। आखिर वे मण्डप में सोये हुये परदेशी को उठाकर कोतवाल के पास ले गये।

लम्बी यात्रा के कारण परदेशी धूल धूसरित तो था ही, वह कोतवाल को चोर सा ही लगा। उसने अपने सिपाहियों से

श्री अमरनाथ पाण्डेय

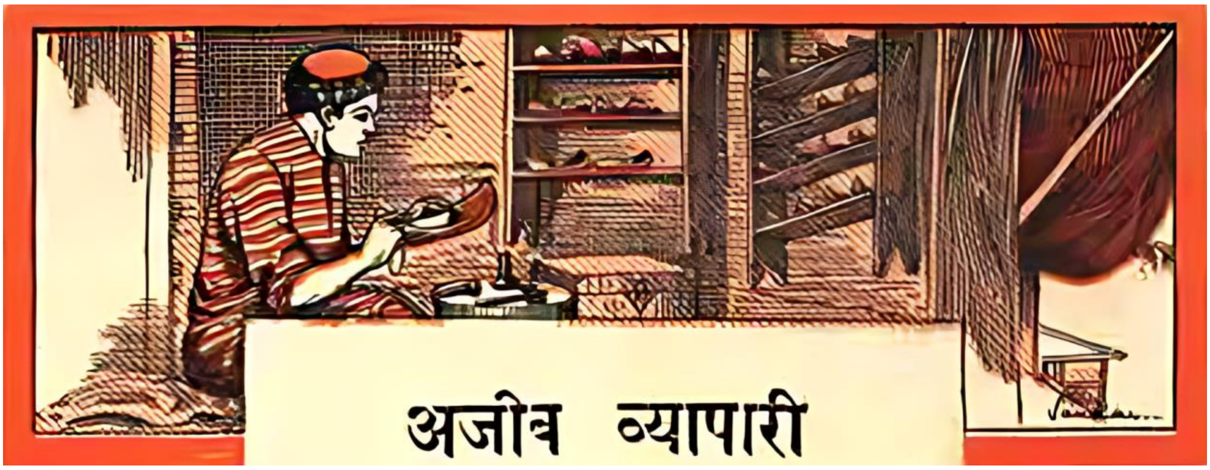
परदेशी को खूब पिटवाया। "सच बताओ तुम कौन हो? क्यों चोरी करने आये थे?" उन्होंने उससे पूछा।

"हुजूर, मैं चोर नहीं हूँ। मैं इन्द्रप्रस्थ का रहनेवाला हूँ। मैं कभी अच्छा अमीर था। भगवान ने मुझे दो बार धोखा दिया। पहले उसने मेरा सारा धन ले लिया। उसको इससे भी तसल्ली न हुई। श्रीमन्नारायणमूर्ति के रूप में प्रत्यक्ष होकर उसने मुझे पाटलीपुत्र जाने के लिए कहा और बताया कि मुझे वहाँ फिर पैसा मिलेगा। इस बात पर विश्वास कर इन्द्रप्रस्थ से पैदल चलता आज रात यहाँ पहुँचा हूँ। और अब आप से मार खा रहा हूँ।" परदेशी ने कहा।

यह सुन कोतवाल ने कहा-"अरे, पागल! कहीं कोई सपनों का विश्वास करता है! थोड़ी देर पहले मुझे भी सपने में श्रीमन् नारायणमूर्ति ने प्रत्यक्ष होकर कहा कि तुम्हारे इन्द्रप्रस्थ में ही तुम्हारे घर के पीछे, फलाने पेड़ के नीचे खजाना है। उसको खोदकर निकाल सकते हो। मैं उसकी बात पर विश्वास कर इन्द्रप्रस्थ नहीं गया। इसलिये सपनों पर यकीन करने का पागलपन छोड़ दो और तुम इन्द्रपस्थ वापिस चले जाओ।" कोतवाल ने सलाह दी।

वह गरीब, जो कभी धनी था, तुरन्त इन्द्रप्रस्थ की ओर निकल पड़ा। उसने कोतवाल की कही बात पर एक पेड़ के नीचे खोदा और सचमुच उसे उसके नीचे बहुत बड़ा खजाना मिला। उस खजाने के कारण वह फिर धनी हो गया। इस तरह उसका सपना सच निकला।





अजीब व्यापारी

कैरो शहर में मारूफ नाम का एक नौजवान रहा करता था। वह गरीब और ईमानदार था। पुरानी चप्पलों की मरम्मत करके रोजी किया करता था।

उसकी पत्नी भी थी। नाम उसका फातिमा था। वह बड़ी चुड़ैल थी। मुँहफट्ट भी। वह पति को खुश तो क्या रखती, दिन रात जली-कटी सुनाती रहती। वह जिन्दगी से ही ऊब गया।

मारूफ इज्जत के साथ ज़िन्दगी बसर करना चाहता था। छोटी छोटी बात पर होहल्ला करना उसे पसन्द न था। इसलिये जो कुछ वह कमाता, पत्नी केलिए ही खर्चता। अगर कभी वह ग़लती से घर पैसे न लाता तो उसकी पत्नी आसमान उठा देती और उसे चैन से न रहने देती।

एक दिन फातिमा ने पति से कहा- "आज शाम को घर आते समय, खूब शहद लगाकर मीठी रोटी लेते आना।" मारूफ ने कहा-"अगर खुदा ने दो चार पैसे दिये तो जरूर लाऊँगा। इस समय मेरे पास कानी कौड़ी भी नहीं है।"

"इसमें खुदा की मेहरवानी क्या है? अगर आज तुम मेरे लिए शहद की रोटी न लाये तो जान लो कि फाके करने पड़ेंगे।" चुड़ैल ने कहा।

मारूफ यह चाहता चाहता कि खुदा उसे पैसे दें अपनी दुकान पर गया। परन्तु, उस दिन, मानों उसकी कोई परीक्षा कर रहा हो, उसको एक पैसा भी न मिला। आख़िर उसके पास इतना पैसा भी न था कि घर मीठी रोटी ले जा सके।

श्री एम. के. मेघाणी



निरुत्साहित, निराश हो, जब वह घर बापिस लौट रहा था तो रास्ते में उसको एक मिठाई की दुकान मिली। वह आँसू बहाता, दुकान के बाहर खड़ा खड़ा अन्दर रखी तरह तरह की मीठी रोटियों को देखता रहा। दुकानदार ने उसको देखकर अन्दर बुलाकर पूछा-"क्यों यों रोनी-सी शक्ल बनाये खड़े हो?" मारूफ ने अपनी कहानी सुनाई।

"अरे! इस जरा-सी बात पर कोई आफत नहीं आ जायेगी? तेरी पत्नी को जो चाहिये, वह मैं दूँगा, जा ले जा। बाद में पैसे दे देना।" कहते हुए दुकानदार ने उसको एक मीठी रोटी दे दी। परन्तु उस पर चिपुड़ने के लिए उस समय उसके पास शहद न था। "शहद के बदले चासनी दूँगा। दोनों का एक ही तो स्वाद है। हमारे खरीददार दोनों को एक ही समझते हैं।" दुकानदार ने रोटी पर खूब चासनी पोत दी।

मारूफ ने उस दुकानदार को धन्यवाद दिया। रोटी लेकर वह घर गया। उसे देखते ही फातिमा ने पूछा-"रोटी लाये कि नहीं?" रोटी को देखकर उसने नाक सिकोड़ते हुए पूछा-" रोटी पर शहद डालकर लाने के लिए कहा था, तुम चासनी डालकर क्यों लाए? तुम समझते हो कि मैं दोनों में फर्क नहीं जानती हूँ?"

"अरे भला हो तेरा। इस बार इस तरह ही खा ले। यह खरीदी भी नहीं है। दुकानदार ने उधार दी है। उसके पास शहद नहीं था। क्या करता?" पति ने हताश होकर कहा।

"मुझे कुछ नहीं चाहिये।" कहते हुए उसने रोटी को पति के मुँह पर फेंक दिया। "जा मेरे लिए शहद की रोटी

ला।" उसने उसके गाल पर चपत मारा। चपत इतने ज़ोर का लगा कि उसका एक दाँत टूट गया और मुख से खून बहने लगा। मारूफ और न सह सका उसने उसके सिर पर धीमे से मारा। तुरन्त फातिमा गुस्से में पागल सी हो गई और अपने पति की दाढ़ी को खींचते हुए चिल्लाने लगी-"कौन है वहाँ, आओ, आओ, बचाओ। मेरा पति मुझे मार रहा है।"

यह चिल्लाना सुनकर, अडोस-पड़ोस के लोगों ने आकर मारूफ को पत्नी की पकड़ से छुड़ाया। जो कुछ गुजरा था वह सुनकर उन लोगों ने उस चुड़ैल से कहा-"चासनी लगी रोटी में भला क्या खराबी है ? क्या हम सब नहीं खा रहे हैं? क्यों इस बिचारे को यो तङ्ग कर रही हो?"

सबके चले जाने के बाद, मारूफ रोटियों के टुकड़े जमा करके पत्नी को स्वाद चखने के लिए मनाने लगा। पर उसने उन्हें छुआ तक न। भूख लग ही रही थी, आखिर उन्हें वह स्वयं खा गया।

रात भर वह पत्नी की डाँट डपट सुनता रहा। सवेरे वह मस्जिद में



गया। वहाँ उसने खुदा से प्रार्थना की कि वह उसके कष्ट दूर करे। फिर वह वहाँ से सीधे अपनी दुकान में चला गया।

वह दुकान में बैठा ही था कि दो सिपाहियों ने आकर कहा-"तुझे काजी साहब ने बुलाया है।" वे उसे उठाकर ले गये। अदालत में काजी बैठा था और उसके सामने फातिमा खड़ी थी। उसके हाथ पर पट्टी बँधी थी और चेहरे पर खून के दाग थे।

काजी ने मारूफ को देखते ही पूछा-"क्या तुम खुदा से कतई नहीं डरते हो?

इस विचारी का तुमने हाथ क्यों तोड़ा? दाँत क्यों तोड़े?" उसने उसे धमकाया।

कुछ देर तक उस मोची की अक्ल जाती रही। उसने काजी से सच्ची सच्ची बात कह दी। काजी को उसकी बात पर विश्वास भी हो गया। उसने दीनार का चौथाई हिस्सा देते हुये उससे कहा-"यह लो, यह ले जाकर अपनी पत्नी को शहदवाली रोटी खरीदकर दो। दोनों फिर कभी न लड़ना झगड़ना। जाओ।"

मारूफ वह पैसा पत्नी को देकर दुकान पर चला गया। थोड़ी देर में सैनिकों ने आकर कहा-"तुम्हें आदलत ले गये थे इसलिये हमें इसका भत्ता दो।" उसे न सूझा कि क्या करे। उसने अपने औजार बेच कर उनको भत्ता दे दिया।

दुकान खाली हो गई। वह अपनी दुस्थिति पर रो धो रहा था कि एक और अदालत के सिपाही ने आकर कहा-"काजी साहब तुम्हें बुला रहे हैं।"

वह उनके साथ अदालत गया। उसने वहाँ भी देखा कि उसकी पत्नी ने पहले की तरह उसके विरुद्ध झूठी शिकायत कर रखी थी। उसने अपनी कहानी सुनाकर काजी से



कहा-"एक घण्टा पहले एक और काजी साहब ने हमारे झगड़े का फैसला कर दिया था।" काजी ने फातिमा पर गुस्सा किया और पूछा- "क्यों ऐसी फरियाद लायी हो, जिसपर फैसला हो चुका है?"

"हुजूर! मेरे पति ने मुझे फिर पीटा है।" फातिमा ने कहा।

काजी ने उसे समझाया और कहा कि वह सिपाहियों को उनका भत्ता दे दे। इस कारण मारूफ़ की जेबें बिल्कुल खाली हो गईं। वह और दुखी हुआ। अपनी दुकान पर चला गया।

एक घण्टे के बाद कुछ मित्र उसकी दुकान पर भागे भागे आये। "मारूफ, आफत आ गई। तेरी पत्नी ने सुबेदार की अदालत में तेरी शिकायत की है। फौरन भाग जाओ।"

मारूफ ने तुरत दुकान बन्द कर दी और जल्दी कैरो नगर से बाहर भाग गया। वैसे तो सरदी के दिन थे। तिस पर बारिश शुरु हो गई थी। वह वर्षा में भीगता, सरदी से काँपता अन्धेरा होने तक चलता रहा। फिर एक उजड़े मकान में पहुँचा। उसने रात वहीं काटी।





अपनी हालत देख कर वह रोया। ब्याही हुयी पत्नी ने ही उसको बेघर बार कर दिया था। भविष्य के बारे में सोचता तो केवल अन्धेरा नज़र आता। इसलिये वह जोर जोर से रोने लगा।

इतने में उसने किसी को यह कहते सुना-"क्यों भाई, क्यों रो रहे हो?"

मारूफ ने सिर उठाकर किसी अजीब शक्ल को देखा। "तुम कौन हो?" उसने पूछा।

"मैं सौ साल से इस उजड़े घर में रहनेवाला भूत हूँ। अगर तुम मुझ से कोई मदद चाहते हो तो बताओ। आज तुम मेरे अतिथि हो।" भूत ने कहा।

"बाबू! अगर तुम कर सको तो मुझे कैरो नगर से अधिक से अधिक दूर ले जाओ। मेरी ज़िन्दगी अब बिगड़ गई है। नई जगह पर जाकर फिर नये सिर से जीऊँगा।" मारूफ ने कहा।

"मेरी पीठ पर बैठो।" भूत ने कहा। मारूफ़ ने वही किया।

उसने आँखें बन्द करके खोली तो वह एक पर्वत के शिखर पर था। पूर्व में सूर्य उदय हो रहा था। पर्वत के नीचे एक बड़ा शहर था।

मारूफ जल्दी जल्दी पहाड़ पर से उतरा और उस नगर में पहुँचा। उसे वहाँ लोग नये दिखाई दिये। उसकी अजीब पोशाक देखकर वे उसके चारों ओर खड़े हो गये। उससे पूछने लगे-"तुम्हारा नाम क्या है? तुम किस देश के हो?"

"मेरा नाम मारूफ है। मैं कैरो शहर का रहनेवाला हूँ।" उसने जवाब दिया।

"तुम्हें कैरो से चले कितने दिन हो गये हैं?" उन्होंने फिर पूछा।

"कल शाम को निकला था।" मारूफ ने कहा। सब ज़ोर से हँसे। एक सज्जन ने उससे कहा-"क्या तुम्हारी अक्ल मारी गई है? कैरो से इस खतान नगर तक का रास्ता पूरे एक साल का है। तू कल क्या निकला कि अभी पहुँच भी गया है? जा वे जा।"

"मैं पैदल नहीं आया हूँ। एक भूत, मुझे अपनी पीठ पर बिठाकर यहाँ लाया, और यहाँ छोड़ कर चला गया।" मारूफ ने कहा।

यह सुनते ही, जमा हुये लोग और भी हँसने लगे। "पागल है।" सब उसके पीछे पड़ गये। उस समय एक महानुभाव वहाँ भगवान की तरह आया। वह उस शहर के बड़े व्यापारियों में से एक था। "क्या किसी परदेशी को इस तरह तङ्ग कर सकते हैं? तुम सब क्या कर रहे हो?" उसने वहाँ जमा हुये लोगों को फटकारा, और उनको चीरता हुआ मारूफ के पास पहुँच गया। वह उसको अपने घर मेहमान बनाकर ले गया। उसकी खूब आवभगत की।

मारूफ नहाया धोया। उसके दिये हुये कीमती कपड़े पहने। पेट भर खाना खाने के बाद उस व्यापारी ने



कहा-"आपकी पोशाक देखकर लगता है कि आप मिश्र के रहनेवाले हैं। आप कहाँ के रहनेवाले हैं?"

"जी हाँ! मैं मिश्र का ही हूँ। मैं कैरो मैं रहता हूँ।" मारूफ ने कहा।

"वहाँ आप क्या करते थे?" व्यापारी ने पूछा।

"पुरानी चपलों की मरम्मत किया करता था।" मारूफ ने कहा।

"कैरो में आपका घर कहाँ है?" व्यापारी ने पूछा।

"लाल गली में।" तुरन्त मारूफ ने जवाब दिया।

"उस गली में रहनेवाले किसी को आप जानते हैं?" व्यापारी ने पूछा। मारूफ न कुछ नाम बताये।

"शेख अहमद नाम के इत्र के व्यापारी को जानते हैं?" व्यापारी ने पूछा।

"क्यों नहीं जानता! हम दोनों का घर एक साथ लगा है।" मारूफ ने हँसते हुए कहा।

"उनका क्या हाल चाल है?"

"अल्लाह की मेहरबानी से ठीक ही है।" मारूफ ने कहा।

"अब उनके कितने लड़के हैं?"

"तीन! मुस्ताफा, मुहम्मद और अलि।"

"वे क्या काम कर रहे हैं?"

"बड़ा लड़का मुस्ताफा मदरसे में पढ़ाता है। दूसरा बाप की तरह इत्र का व्यापार करता है। उसकी दुकान भी पिता की बग़ल में है। तीसरा अलि.... हम दोनों छुटपन में साथ खेला करते थे। हम दोनों गिरजे में घुस जाते, वहाँ से किताबें चुराते, और उन्हें बेच बाच कर मिठाई खरीदते। एक दिन हमें गिरजा वालों ने पकड़ लिया। शेख अहमद ने



अपने लड़के को खूब पीटा। वह घर से चम्पत हो गया। पिछले बीस सालों से उसका कोई पता नहीं है।

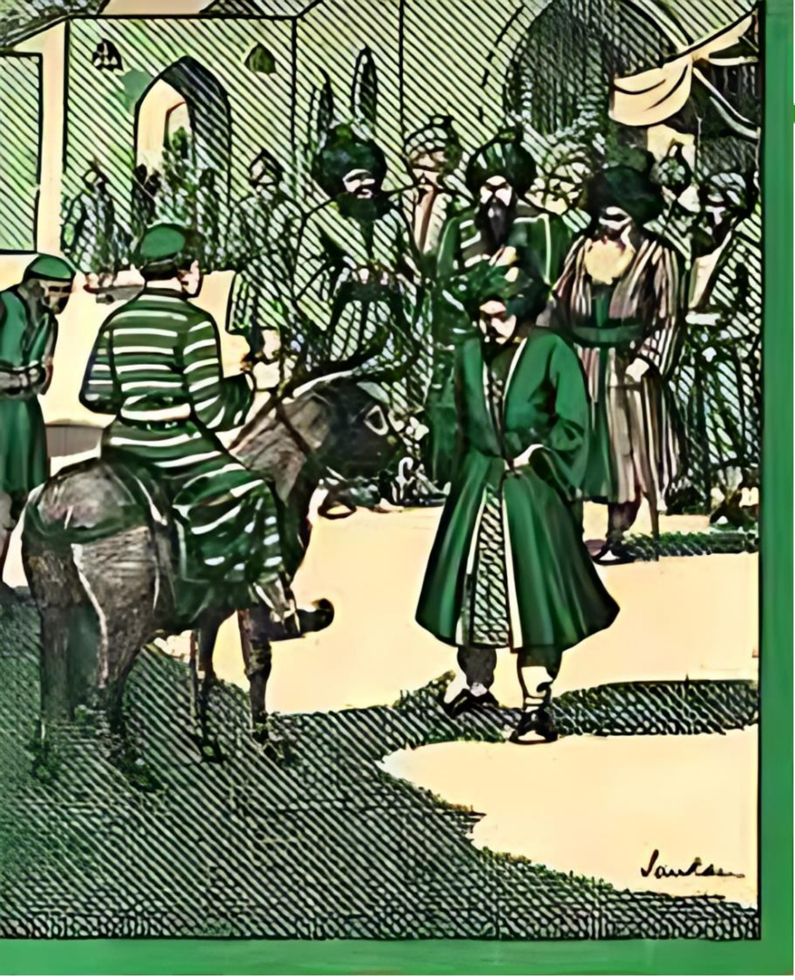
मारूफ के यह कहते ही व्यापारी ने उठकर उसको गले लगाकर कहा- "मारूफ़! मैं ही वह अलि हूँ।"

फिर मारूफ ने अपना सारा किस्सा अपने दोस्त को सुनाया। सब सुनकर अली ने कहा-"देख भाई! अगर लोगों को यह मालूम हो गया कि तुम पेट के लिए मोची का काम करते थे और पत्नी से डर कर भाग आये हो, तो तुम्हारी कोई ख़ातिर न करेगा। अगर तुमने कहा कि तुम एक दिन में ही कैरो से यहाँ पहुँच गये हो, तो सब हँसेंगे। जब सच कहने की ज़रूरत न हो, तो ठीक तरह झूठ कहने में ही अक्लमन्दी है। तुम नहीं जानते मैं इस शहर में आकर क्या क्या कारनामें करके बड़ा हुआ हूँ।"

"तो तुम मुझे क्या करने के लिए कहते हो?"

"मैं बताता हूँ। सुन। कल सवेरे मेरे खच्चरों में से एक अच्छा खच्चर चुनकर, सवार हो बाजार आओ। अपने साथ मेरे घर





का एक गुलाम भी लेते आना। वहाँ मैं और कुछ बड़े व्यापारी बैठे हुए होंगे। तुम्हें देखते ही मैं बड़े अदब से उठकर तुम्हारी आगवानी करूँगा। मैं यह कहकर कि तू कैरो नगर का सबसे बड़ा व्यापारी है, तुम्हारा उनको परिचय दूँगा। अगर कोई भिखारी आये तो उन्हें खूब खैरात देना। उसके लिए में तुम्हें अभी कुछ पैसा देता हूँ। तब मैं तुम से पूछूँगा- "क्या फलाना माल है?" कहना कि खूब है। यह देखने के बाद, वे व्यापारी तुम से व्यापार करना चाहेगें। उनकी मदद से तुम सचमुच बड़े व्यापारी बन सकते हो। मैं इसी तरह व्यापारी बना था।" अलि ने कहा।

अगले दिन, अलि अपने दोस्त को कीमती पोशाक और हज़ार सोने की दीनारें देकर बाजार चला गया। उसके कहे मुताबिक, मारूफ एक खच्चर पर सवार होकर, एक गुलाम को लेकर, बाज़ार गया। वहाँ उसको अलि के साथ खतान के बड़े बड़े व्यापारी बैठे दिखाई दिये।

उसे देखते ही, अलि झट उतरा, सामने जाकर उसने उसके पैर छुए। उसको खच्चर पर से उतारा, और लाकर व्यापारियों के बीच में बिठाया।

बाकी व्यापारीयों ने एक एक करके अलि के कान में पूछा-"ये कौन हैं?"

"मिश्र में इनसे बड़ा कोई व्यापारी नहीं है। इनके बाप दादाओं के ऐशो आराम के बारे में तरह तरह की कहानियाँ कही सुनी जाती हैं। प्रायः हर देश में इनकी दुकानें हैं। उनके मुकाबले में हम निरे पन्सारी से हैं।" अलि ने उनको बताया।

यह सुनकर वे व्यापारी, एक से एक बढ़कर उसकी आवभगत करने लगे। खूब

इज्जत करके उसको शरबत वगैरह, पिलाये। एक बड़े व्यापारी ने उसके पास जाकर पूछा-"क्या आप अपने साथ कुछ हरा रेशम लाये हैं?"

"ढेर का ढेर" मारूफ ने कहा।

"और लाल?" एक और बड़े व्यापारी ने पूछा।

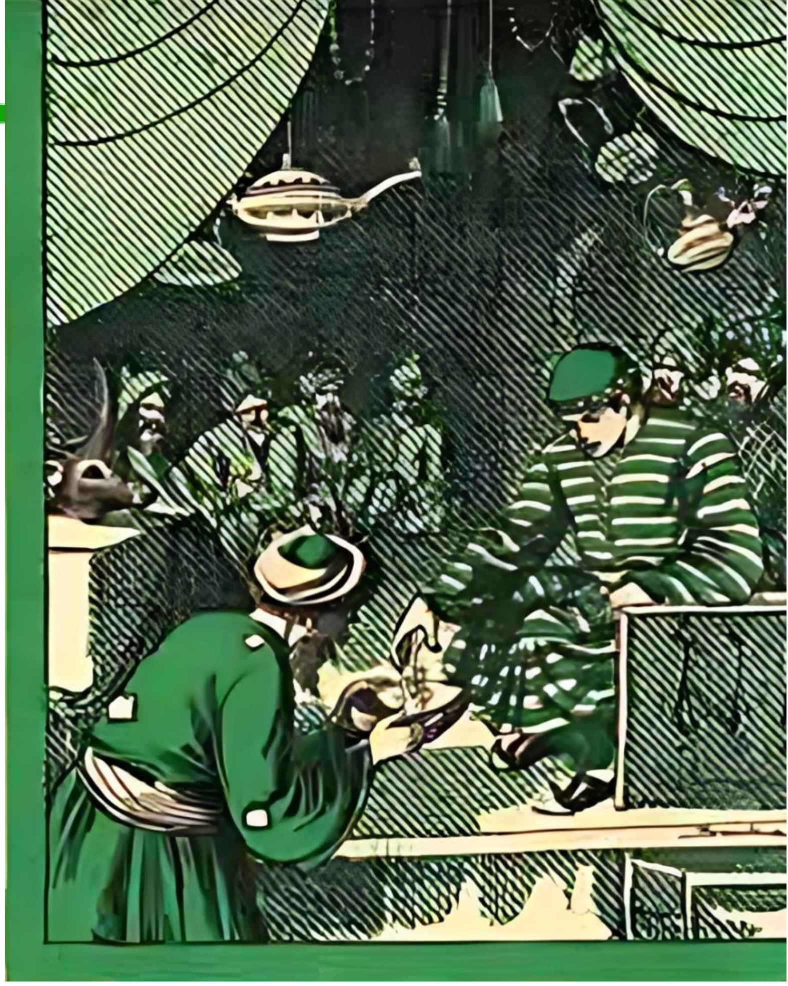
"ढेर का ढेर" मारूफ ने कहा।

बाकी व्यापारियों ने जिस किसी माल के बारे में पूछा, उसने "ढेर का ढेर" जवाब दिया।

"क्या मेहरबानी करके आप माल दिखा सकेंगे?" व्यापारियों ने पूछा।

"जरूर दिखाऊँगा। माल आने दीजिये। हज़ारों खच्चरों वाला हमारा काफिला कुछ दिनों में ही इस शहर में पहुँच रहा है।" मारूक ने कहा।

जब यों बातचीत चल रही थी तो एक भिखारी ने आकर व्यापारियों के सामने हाथ पसारे। तुरन्त मारूफ ने जेब से मुट्ठी भर सोने की मुहरें निकाल कर उसके हाथ में डाल दीं। यह देख बाकी व्यापारी भौंचक्के रह गये। "यह आदमी राजाओं से भी



अधिक रईस मालूम होता है।" उन्होंने आपस में सोचा।

थोड़ी देर बाद एक भिखारी ने आकर भीख माँगी। उसको भी मारूफ ने मुट्ठी भर सोना दिया। उसने जाकर और भिखारियों को बताया। वे एक झुण्ड बनाकर वहाँ आये।

बिना आगे पीछे देखे जितना सोना उसके पास था वह सब उसने भिखारियों को दे दिया। जेबें खाली होने के बाद उसने कहा-"अगर मुझे मालूम होता कि इस शहर में इतने भिखारी हैं और सोना साथ ले आता।"

"आप फिक्र न कीजिये.... अगर आपको जरूरत हो तो हम दे देंगे।" एक बड़े व्यापारी ने कहा।

देखते-देखते मारूफ के हाथ में हज़ार और दीनारें आ गईं, वह दुपहर की नमाज़ तक उन्हें बाँटता रहा और बाकी को मस्जिद में नमाज पढ़ने वालों के सामने उसने फेंक दिये। नमाज के बाद उसने एक हज़ार दीनारें और कर्ज में ली और उन्हें भी बाँट दिया। शाम तक.... उसने व्यापारियों से पाँच हज़ार दीनारें उधार लेकर लोगों में दान कर दिया।

उसका दान देख कर आश्चर्य करते हुए लोगों को देखकर उसने कहा- "मेरा काफिला आने दीजिए; आप चाहेंगे तो आपका कर्ज़ सोने में चुका दूँगा ..... नहीं तो माल के रूप में दे दूँगा।"

उस दिन अलि ने व्यापारियों को दावत दी। उन में मारूफ़ मुख्य अतिथि था। उसको ऊँचे आसन पर बिठाया गया। वह रात भर रेशमी थानों के और जेवर-जवाहरातों के बारें में बातचीत करता रहा। अगर कोई बीच में पूछ बैठता-"क्या आपके काफले में फलानी चीज़ आ रही है?" तो वह जवाब देता- "ढेर के ढेर।"

अगले दिन वह फिर बाज़ार गया। व्यापारियों से कर्ज लेकर, भिखारियों को बाँटता इस तरह वह बीस दिन तक दान-पुण्य करता रहा। तब तक वह वहाँ के व्यापारियों से साठ हजार दीनारें उधार ले चुका था। और उसके काफले का कहीं पता न था।

(अगले अङ्क में समाप्त)



